सखाराम।

वृद्ध विवाह के स्वाभाविक दुष्परिणामों को लक्ष्य
कर लिखा हुआ एक मौलिक और

सामाजिक उपन्यास।

लेखक—

श्रीयुत् मदारीलाल गुप्त।

प्रकाशक—

"चाँद" कार्यालय,

इलाहाबाद।

फ़रवरी, १९२४

प्रथमबार] [मूल्य एक रुपया

रुपिया—और आप क्या सुनावेंगे ? कोई सा गाना गाइये ।

सखाराम वही तो पूछ रहा हूं । कौनसा गाना सुनाऊं ?

रुपिया वही तो कह रही हूं । कोई सा भी गाना गा दीजिये । मैं इसके भेद थोड़े ही जानती हूं । मैंने काव्य नहीं पढ़ा है । बस श्रीमुख से सुरीली आवाज़ भर निकलनी चाहिये ।

सखाराम ने ज़रा अठिला कर कहा यह बात है ।

रुपिया सिर हिला हंसते हुये बोली, हां ।

सखाराम—अच्छा तो सुनिये ।

रुपिया ने अपना भाव ऐसा बनाया, मानो वह बड़ी उत्सुकता से गाना सुनने के हेतु प्रस्तुत है । सखाराम से अपनी हंसी नहीं रोकी गयी । बड़ी कठिनता से वह अपने को गम्भीर बना सका । उसने गाना आरम्भ किया ।

"अविचल होय......................"

स्वर भर्रा गया । सखाराम खांसने लगा । रुपिया ने ज़रा तनक कर कहा 'बस, बस, मैं समझ गयी । आपको गाना वाना तो हुई नहीं । बस, हंसी करना है । मैं आपका गाना नहीं सुनना चाहती । रहने दीजिये ।"

सखाराम—"मैं तो आपको अवश्य अपना गाना सुनाऊंगा बिना सुनाये नहीं रहूंगा । आपको सुनना पड़ेगा ।"

रुपिया शान्त हो गई । सखाराम हारमोनियम के साथ ही साथ गाने लगा ।

प्रकाशक—
"चांद" कार्यालय,
इलाहाबाद।

मुद्रक—
पं० विश्वम्भरनाथ वाजपेयी,
ओंकार प्रेस, प्रयाग।

का कुछ ध्यान ही न रहा। अचानक रुपिया की दृष्टि खिड़की के बाहर की ओर गयी। "हैं! यह तो सन्ध्या हो चली" उसके मुख से निकल पड़ा।

बादल छँट गये थे। आकाश निर्मल हो गया था। सूर्य्य के अस्त हो जाने में थोड़ा ही विलम्ब था। रुपिया गम्भीर मुख बनाकर एक चित्र की ओर देखने लगी। ईश्वर जाने कौन चतुर चितेरा नाना प्रकार के विचित्र चित्र बना रहा था। रुपिया को जान पड़ा, जैसे एक शान्त प्रकृति का सुडौल हाथी झट से भयानक शेर बन गया हो।

जिक नियम के प्रतिकूल उनमें कोई भी अनुचित सम्बन्ध नहीं है। परमात्मा की न्याय-दृष्टि के निकट ये पवित्र सौन्दर्य्य-प्रेमी सर्वथा ही निर्दोष हैं।

भा किसी ओर जाने का निश्चय कर लिया। कहां जायगा? वह नहीं जानता था। क्या करेगा? वह नहीं कह सकता था। फिर भी एक ओर को जाने लगा। स्वप्न में जैसे कोई अज्ञानावस्था में अचानक उठकर भागने लगता है। उसी प्रकार वह भी वेग से जाने लगा। एक बार वह टेबिल से टकरा गया। इस ओर ध्यान न देकर वह शीघ्रता से कमरे के बाहर होगया। बाहरी द्वार लांघ कर मैदान में चला आया। रात्रि का एक बजा था। चन्द्र अस्त होगया था। तारों का क्षीण प्रकाश चारों ओर फैला हुआ था। द्वार पर पहरा देने वाले दीनानाथ के विश्वासी नौकरों ने सखाराम को देखा। विक्षिप्त की नाईं हाथ फैलाये हुए वह दौड़ा चला जाता था। विस्मित हो, वे उस ओर देखने लगे। किसी का साहस नहीं हुआ कि दौड़कर उसे रोके और रात के समय इस प्रकार बाहर जाने का कारण पूछें। जब वह दृष्टि की ओट हो गया, तब वह चौकन्ने हुए। हक्के बक्के हो एक दूसरे की ओर देखने लगे।

प्रकाशक का निवेदन।

सामाजिक कुरीतियों को लक्ष्य कर ही हमारे यहां से पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं। हमें इस बात का वास्तव में हर्ष है कि जनता की निगाह में पहिले की अपेक्षा आज ऐसी पुस्तकों का कहीं ज़्यादा मान है। और ऐसी पुस्तकों के द्वारा भारत का सच्चा हित भी हो रहा है। अस्तु!

वर्तमान पुस्तक भी वृद्ध विवाह के दुष्परिणामों का स्वाभाविक चित्र खींचा गया है। निर्धन पिता की कन्या का भाग्य हमारे समाज में कैसा है, किस प्रकार उसे बेचा जाता है और इससे समाज में क्या क्या ख़राबियां उत्पन्न हो जाती हैं, लेखक ने इन्हें स्वाभाविक रूप में जनता के सामने रखने का प्रयत्न किया है। अन्त में लेखक ने यह भी दिखाया है कि इस प्रकार की घटनाओं से सबक़ सीख कर जनता इन्हें दूर करने का प्रयत्न करे तो इससे समाज को अपार लाभ पहुंच सकता है। और शीघ्र ही बहुत सी कुप्रथाएं नष्ट हो सकती हैं। तारा नाम की बालिका के स्वदेश प्रेम और स्वार्थ त्याग से पाठिकाएं बहुत कुछ सीख सकती हैं। रुपया तथा सखाराम को सच्च-

सखाराम के जीवन का भविष्य-मार्ग एक दुर्घटना के आ पड़ने से बिलकुल अन्धकारमय होगया था। अब उसने देखा कि इसमें कुछ कुछ प्रकाश पड़ रहा है। उसे आशा हुई। उसे भरोसा हुआ कि अभी कुछ शान्ति उसके लिये बची है। तारा उसके मुख के उतार-चढ़ाव को देख कर उसके मन की बात जानते हुये रास्ते भर प्रसन्न होती गई।

रित्रता भी प्रशंसनीय रही है। रुपया का सखाराम पर जो अनुचित प्रेम दिखलाया गया है वह बिलकुल स्वाभाविक है। यदि बूढ़े दीनानाथ अपना विवाह न करके अपने भाई सखाराम का विवाह रुपया से कर दिए होते तो यही परिवार कितना सुखी होगया होता यह पाठकगण कल्पना करके ही देख सकते हैं। इस पुस्तक का आदर्श है पात्रों का पश्चात्ताप करना और समाज सेवा में लग जाना। प्रत्येक पात्र के चरित्र से कुछ न कुछ शिक्षा मिलती है।

यदि पुस्तक पाठकों को पसन्द आई अथवा इसके द्वारा समाज का कुछ भी उपकार हो सका तो हम अपने परिश्रम को सफल समझेंगी। और शीघ्र ही अन्य पुस्तकें प्रकाशित कर पाठकों की भेंट करेंगी।

"चांद" कार्यालय,
इलाहाबाद।
१५ फ़रवरी, १९२४

विनीत—
—विद्यावती सहगल,
सञ्चालिका।

पच्चीसवाँ परिच्छेद ।

व्याख्यान ।
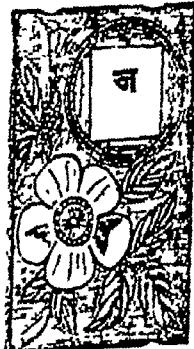
जगह जगह जा जाकर सखाराम लोगों को इकट्ठा करने लगा और उन्हें उनके हित की बातें सिखलाने लगा । जहां जहां वह गया वहां वहां उसका बड़ा आदर हुआ । हर एक स्थान के लोग उसका नवीन प्रकार से सन्मान करते थे । भारत-भ्रमण में सखाराम को बहुत आनन्द आया । काम करने के साथ ही साथ उसका उत्साह भी बढ़ता जाता था । उस में नित्य नये प्रकार की स्फूर्त्ति आती जाती थी । अनेकों स्थानों पर उसने पंचायतें बनवायीं, राष्ट्रीय विद्यालय खोले, खादी बनाने वाले बड़े बड़े कारखानों का निर्माण किया और बहुत से अच्छे अच्छे काम किये । सखाराम के नाम ही से लोग उत्तेजित हो उठते थे । फिर जब वह उनके सामने तेजस्वी बाल-सूर्य्य की भाँति व्याख्यान-मञ्च रूपी उदयाचल पर्वत पर अवस्थित होता था, तब भला क्या कहना है । लोगों के हृदय बांसों ऊपर उछलते थे । सुन्दर बालब्रह्मचारी मूर्त्ति के अवलोकन करने से यही जान पड़ता था, मानों स्वयं

सखाराम।

वज्राघात।

वरें पड़ने लगीं। आरम्भ ही में खड़े होकर कन्या ने अपने पीछे की ओर देखा। मन हाथ से जाता रहा। उसका शरीर तो वर के साथ घूम रहा था और मन किसी दूसरे ही के चारों ओर चक्कर लगाने लगा। कन्या ने अपनी घूँघट कुछ ऊपर को चढ़ा लिया। घूमते समय हर बार सामना होने पर वह कुछ ऊँचा सिर करके दबी निगाह से एक मोहिनी मूर्त्ति देख लेती थी।

लगभग इक्कीस वर्ष की उम्र होगी। मूँछे आने के स्थान पर कुछ कुछ कालापन हो आया था। साधारण अच्छी देह। न बहुत मोटी और न बिलकुल पतली ही बड़ी बड़ी आंखें। पैंठे

काँपने लगा। भाई की भयानक सूरत आ कर सामने खड़ी हो गयी। रुपिया का मुर्झाया हुआ मुख एक कोने में दिखायी दिया। दुःख से उसका हृदय संकुचित् होने लगा। मेरे कानपुर जाने से उस ग्राम के भी बहुत से लोग आवेंगे। तब क्या होगा ? मुझे सहस्त्रों मनुष्यों के सन्मुख अपना मुख पापी न होने पर भी छिपाना पड़ेगा। लज्जा से अवनत मस्तक हो अपना विवेक भूल जाना पड़ेगा। बड़ी बुरी दशा होगी। क्या करूं ? इधर कर्त्तव्य पर ध्यान करने से मेरा वहां जाना अत्यन्तावश्यक है। उन्हें निराश करना किसी प्रकार भी उचित नहीं। बड़ी आफ़त में जान फंसी है। दुःख के समय अपने पुराने हितचिन्तकों की बात याद आ जाती है। उसे तारा का ध्यान हुआ। उसने सोचा यदि वह इस समय होती, तो मैं खुल कर उससे अपने मन का हाल कहता। वह मुझे उचित सलाह देती। सखाराम चिन्ता में लीन हो गया। उसी ध्यान में उसने देखा जैसे तारा आकर उसका हाथ पकड़ कर उठा रही है, कह रही है "छिः! कायर मत बनो। कर्त्तव्य की ओर ध्यान दो।" एक बड़ा सहारा मिला। विचार-धाराओं से बाहर निकल कर उसने अपना हृदय दृढ़ किया। वही पहिले का सा उमंग ले कर उसने कानपुर जाने की ठानी।

नियत समय पर सखाराम कानपुर पहुंचा उसके आने की आशा लोगों के हृदयों को फड़फड़ा रही थी। उन्होंने अपनी सच्ची भक्ति दर्शा कर उसका इष्ट देव की तरह आदर

हुए बालों ने उठकर चारों ओर से टोपी को घेर लिया था। दो चार गुच्छे माथे पर भी लटकते थे। गोरा शरीर बड़ा सुन्दर और सुकुमार जान पड़ता था। अंग्रेज़ी फ़ैशन का बना हुआ रेशमी कॉलर-कोट शरीर पर था। जेब में पड़ी हुई घड़ी की सुनहली चेन बाहर लहर मार रही थी। कोट का कॉलर नाभी तक खुला हुआ था। क़मीज के सोने के बटन चौड़ी छाती पर चमक रहे थे। कन्या रीझ गयी। अपना कर्त्तव्य भूल गयी। वह जो आजन्म के लिये दूसरे से बांधी जा रही थी, इसका उसे तनिक भी ध्यान न रहा। वह अब स्वतन्त्र नहीं है, उसका हृदय स्वतन्त्र नहीं है, उसका शरीर दूसरे के अधीन हो गया है, विचार उसके धर्म बन्धन से जकड़ गये हैं, इन सब बातों की ओर वह लक्ष्य नहीं कर रही है। बस सुन्दर मुख देखा और मोहित हो गयी। उस बेचारी का भी क्या दोष है? सौन्दर्य्य में अनुपम शक्ति है। उसके सन्मुख कोई अपना मन अपने वश में नहीं रख सकता। बड़े बड़े महात्माओं की भी क़लई खुल गयी है। कन्या ने क्या किया! उसका मन स्वयं ही दूसरे स्थान पर उड़ गया। वह अपने को सम्हाल ही नहीं सकी। यह दोष सृष्टिकर्त्ता का है। उसने अपनी सृष्टि में सौन्दर्य्य-भेद क्यों रखा? यदि रखा ही तो उसके निरीक्षण करने के लिये चक्षु क्यों प्रदान किये?

एक ओर पुरोहित बैठ कर वर-कन्या को एक में मिलाने का प्रयत्न कर रहा था—पालथी मार कर हाथ पटकते हुए

मीठी मीठी बातों की याद आने लगी। यहां तक प्रेम बढ़ा कि श्रीराम ने उसी समय से अपने जाने की तैयारी करनी आरम्भ कर दी। दौड़-धूप मचा दी। उसमें था कुछ नहीं। दीनानाथ और सखाराम के लिये कोई सौगात और रुपिया के लिये गहने भर रखने थे। इसी में सब ठौर-कुठौर कर दिया। घंटों लगा दिये। सात बजते बजते तीन घोड़े कसने की आज्ञा दी। कुछ ही देर में हिनहिनाते हुए और गर्दनों को क्षण क्षण में यहां वहां घुमाते हुए वे सामने आ खड़े हुए। तीनों में जो देखने में अत्यन्त भड़कीला और मस्त था, उस पर श्रीराम सवार हो गये। शेष दो पर नौकर आ बैठे।

जाते समय श्रीराम ने एक पड़ोसी से कहा, "भाई इधर भी निगाह रखना। रुपिया को लेने जा रहा हूं"।

वह जल्दी से उठते हुए बोला, "अच्छा है, अच्छा है। भगवान करे आप जल्दी ही राज़ी खुशी लेकर लौट आवें।

श्रीराम घोड़े को एड़ लगाकर चल पड़े। पीछे पीछे दोनों नौकर भी बढ़े। मार्ग में यदि कोई पूछता, "कहिये कहां चले?" तो आप नम्रता से हँसकर उत्तर देते थे, "रुपिया को लेने जा रहा हूं"। गांव की हद्द तक तो घोड़े धीरे धीरे चले, फिर चाल तेज़ कर दी गई।

उत्साह से पूर्ण श्रीराम बड़ी देर तक घोड़ा दौड़ाये चले गये। गड्ढे और टीलों की ओर देखते तक न थे। उनकी दृष्टि बहुत दूर वायु में अङ्कित एक चित्र पर थी। अन्त में दीनानाथ

ज़ोरों के साथ संस्कृत के श्लोक धड़धड़ा रहा था दूसरी ओर कन्या दूसरे ही उधेड़बुन में पड़ी थी। सौन्दर्य्य की छटा निरख रही थी—पुरोहित जी का किया कराया सब मिट्टी में मिला रही थी। मन्त्र की भांति वह ब्याह का कार्य सम्पादन करती थी। बैठने को कहने पर धम्म से गिर पड़ती थी। खड़े होने का समय आने पर उससे बड़े कष्ट से उठा जाता था।

कन्या का मन हरण करने वाला युवक साधारण भाव से बैठा था। उसके सरल मुख से यह स्पष्ट जान पड़ता था कि उसने कन्या के हृदय का मर्म नहीं जाना। ब्याह के अवसर पर उसमें सम्मिलित होने वाले लोगों के मुख पर, जैसी स्वाभाविक प्रसन्नता दृष्टिगोचर होती है, वैसी ही उसके मुख पर भी विराजमान थी। उसका प्रसन्न वदन कुछ कुछ मुस्कुराहट लिये हुए था। भाव उसका गंभीर था। दूसरे लोगों की तरह वह किसी से ख़ूब बढ़ बढ़ कर बातें नहीं करता था। चंचलता उसमें नाम मात्र को भी न थी। वह अन्य लोगों की भांति अपने स्थान से उठ कर बार बार यहां वहां नहीं जाता था। उसके मुख पर एक अलौकिक दीप्ति विद्यमान थी, जिसके कारण लोग उसे देखते ही उस पर मोहित हो जाते थे। ईश्वर ने उसके मुख पर विचित्र आकर्षण-शक्ति का मसाला मल दिया था।

मन के लड्डू।

ता के अन्तिम अनुरोध से दीनानाथ ने अपना दूसरा विवाह करना स्वीकार कर लिया। किन्तु उम्र अधिक थी। लगभग पैंतालीस वर्ष थी। कदाचित इससे भी अधिक रही हो। कोई इनके साथ अपनी कन्या का विवाह करना ही न चाहता था। अपनी बारह वर्ष की दुलारी पुत्री कोई बूढ़े के गले में कैसे बांध दे। पैंतालीस वर्ष की अवस्था कुछ इतनी अधिक नहीं है, पर दीनानाथ सच ही बूढ़े के समान जान पड़ते थे। गाल चुचुक गये थे। देह का चमड़ा कुछ ढीला पड़ गया था। बाल भी श्वेत हो चले थे। लोग कहते थे, "यह तो लड़की के बाबा के समान जान पड़ता है।" इनके विवाह का प्रसंग उठते ही लोग जहां तहां हँसने लगते थे।

माता के सन्मुख दीनानाथ ने अपना ब्याह करना बड़ी कठिनता से स्वीकार किया था। इस झंझट में पड़ना उन्होंने अच्छा नहीं समझा था। पर उनका अन्तिम अनुरोध टालना भी उन्होंने उचित नहीं समझा। किसी तरह अपनी सम्मति देनी ही पड़ी। उनका छोटा भाई सखाराम बड़ा ज़िद्दी था।

माता उसके ब्याह करने के प्रयत्न में बहुत रही। पर वह नहीं ही माना। एकदम नाहीं करता गया। जब कभी उस पर बहुत दबाव डाला जाता, तो वह रोने लगता था। न जाने उस का मन विवाह की ओर से इस प्रकार क्यों फिर गया था। कोई इसका कारण नहीं समझ सकता था। अन्त में हार मान कर माता ने बड़े बेटे दीनानाथ को पास बुला कर कहा, "बेटा! मैं समझा कर तंग आ गयी। सखाराम अपना विवाह करना स्वीकार नहीं करता। ईश्वर जाने उसके भाग्य में क्या बदा है। मैं यह घर बिना स्त्री का नहीं देख सकती। मेरा मरण बिलकुल ही निकट है। मेरे पश्चात् यह बिलकुल सूना हो जायगा। तुम्हारी पहिली स्त्री भी स्वर्ग को चली गयी। तुम्हीं मान जाओ। अपने लिये एक अच्छी सी लड़की खोज कर उसके साथ विवाह कर लेना। मेरी आत्मा को सुख मिलेगा। बोलो, मेरी बात मानते हो?" दीनानाथ क्या करते? विवश होकर माता का कहना मानना ही पड़ा। कन्या की खोज में लगे। बहुत इधर उधर सिर मारा पर कहीं कोई नहीं मिली। बहुत दिनों तक व्यर्थ ही परिश्रम किया। परिश्रम के बदले में उन्हें मिली जग-हँसायी॥

दीनानाथ एक उच्च कुलोद्भव, शक्तिशाली एवं धन सम्पन्न व्यक्ति थे। यह उनसे सह्य न हो सका। उन्हीं के गांव के लोग छिप कर और चार मनुष्यों के सन्मुख भी इस विवाह के विषय में अपने विह्वल भाव प्रगट करते थे। दीनानाथ से यह बात

छिपी नहीं रहती थी। लोगों के व्यङ्ग, तीर की तरह उनके हृदय को छेद कर पार हो जाते थे। इस तरह की अपनी मान-हानि उनसे देखी न गयी। वे विचलित हो उठे। इसका कुछ प्रतिकार करने के उद्योग में लगे।

लोगों का यह कदाचित स्वभाव सा है कि जब वे कोई कार्य करना चाहते हैं और दूसरे लोग उसे बुरा समझ कर उसका विरोध करते हैं, उसमें बाधा डालते हैं और कार्य कर्ताओं की हँसी उड़ाते हैं, तब कार्य कर्ता लोग उत्तेजित होकर उसके करने की टेक पकड़ लेते हैं। फिर वे उस कार्य में अपनी तथा दूसरों की होने वाली हानि अथवा लाभ की ओर ध्यान नहीं देते। यहां तक कि उसके पूरा करने के लिये चाहे कुछ भी कर डालना पड़े ज़रा नहीं हिचकिचाते। यही हाल दीनानाथ का भी हुआ। जब उन्होंने अपने इस कार्य में लोगों का इस प्रकार का विरुद्ध भाव देखा और उन्हें अपने तईं बुरी तरह अपमानित होना पड़ा, तब यह प्रण कर लिया कि प्रथम तो मैं अपने व्याह करने का यत्न केवल अपनी माता के ही अनुरोध से करना चाहता था, किन्तु अब इसके करने के लिये अपनी भी पूर्ण इच्छा और सारी शक्ति लगा दूंगा। इच्छा शक्ति दबाने से और भी प्रबल हो उठती है।

दाल नहीं गली।

दूसरे दिन ज्ञात हुआ कि पास ही के एक गांव में श्रीराम नाम के एक व्यक्ति हैं। उनकी एक कन्या है। उसकी वयस लगभग सोलह वर्ष की हो गयी है, पर धनाभाव से श्रीराम उसका व्याह नहीं कर सकते। दीनानाथ को यह अवसर अच्छा जान पड़ा। 'अब विलम्ब केहि काज'। तुरंत ही पुरोहित जी को बुला, उचित बातें समझा कर विवाह ठीक ठाक करने के लिये भेज दिया। जाते समय पुरोहित जी को एक पत्र और अपनी नाम खुदी हुई स्वर्ण की अँगूठी देकर कह दिया था कि यदि कन्या का पिता विवाह करना स्वीकार कर ले, तो कन्या को यह अँगूठी पहना देना। पहिना कर फिर उन से कहना कि ज़मींदार साहब की ओर से विवाह पक्का हो गया इसी का यह चिन्ह है। पुरोहित जी को प्रत्येक शुभ अवसर पर ज़मींदार दीनानाथ के यहां से बहुत कुछ मिल जाता था। इस समय भी उन्हें यथेष्ट धन मिला था। और मिलने की आशा थी। बड़े आनन्द से वे निर्दष्ट स्थान की ओर जाने लगे।

दीनानाथ इस समय बहुत प्रसन्न थे। उन्होंने समझा, बस पौ बारह हैं। कार्य पूरा होने में कुछ भी सन्देह नहीं। वह ग़रीब बेचारा ज़मींदार के यहां अपनी लड़की देने में अपना अहोभाग्य समझेगा। मेरा विवाह हो जाने पर डाह से जलने वालों की आँखें नीची हो जावेंगी। उनका मान मर्दन हो जायगा। वे कुढ़ते रहेंगे, मैं आनन्द मनाऊंगा। अहाः वह दिन कैसे हर्ष का होगा जब मैं अपनी टेक निभा कर लोगों में अपना माथा ऊँचा कर सकूंगा। मुझ से गये बीते लोग भी विवाह करते हैं। मैंने स्वयं देखा है कि लाठी थाम कर भी धीरे धीरे चलने वाले बूढ़े मंडप के तले बैठने में नहीं सकुचाते। फिर मुझ ही पर लोगों का इतना ख़ार क्यों है? बड़े अन्याय की बात है। संसार में मैं यह कोई नया कार्य तो कर नहीं रहा हूं। इसके अतिरिक्त मैं अभी केवल पैंतालीस वर्ष का हूं। मैंने साठ वर्ष के बूढ़ों के यहां लड़का पैदा होते देखा है। इस हिसाब से तो मेरी उम्र अभी कुछ है ही नही। लोग, जो बिना समझे बूझे दूसरों को दोष देने लगते हैं, स्वयं ही दोषी हैं। इन्हीं विचारों में मग्न रहते हुए दीनानाथ ने रसोई-घर में जाकर ख़ूब भर पेट भोजन किया।

उचित समय पर पुरोहित जी श्रीराम के घर पहुंचे। भली प्रकार उनका स्वागत किया गया। एक स्वच्छ कमरा ठहरने के लिये ख़ाली हो गया। खाने पीने का सब प्रबन्ध उत्तम प्रकार से हुआ। श्रीराम पुरोहित जी के आने का कारण पहिले ही से

समझ गये, पर उन्होंने किसी से कुछ कहा नहीं। पुरोहित जी के सन्मुख आने पर उनसे क्या क्या बातें करनी होंगी, मन ही मन वे उनका क्रम बांधने लगे। वे यह अनुचित कार्य करना भी नहीं चाहते थे और उनकी इच्छा ज़मींदार को रुष्ट करने की भी नहीं थी। क्या करें कि जिसमें 'साँप मरे न लाठी टूटे'।

यहां पुरोहित जी अपनी डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग ही पका रहे थे। श्रीराम का आदर-सत्कार देख वे घी के कुप्पे की तरह फूल गये थे। सोचा, बस, अब तो दोनों हाथ लड्डू हैं। मुँह में घी-गुड़ पड़ा ही चाहता है। दीनानाथ के विवाह में वह नोंच-खसोट मचाऊँ कि फिर मैं ही मैं नज़र आऊँ। तब तो एक ओर सारे बराती और दूसरी ओर मैं रहूंगा। सब लोगों पर बेतरह हुकूमत करूंगा। ऐसा मचलूंगा और अड़ूंगा कि दूल्हा क्या मचलेगा और अड़ेगा। बड़ी बहार आवेगी। बड़े भाग्य से ऐसा अवसर हाथ लगा है। ऐसा गहरा माल घर ले जाऊँगा कि पुरोहिताइन देख कर पुलकायमान हो जावेंगी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि पुरोहित जी बड़े अग्रसोची थे।

सन्ध्या होने में एक घंटे की देर थी। पुरोहित जी चादर सँभालते हुए श्रीराम के कमरे की ओर चले। देखा, निराला है। चट आशीर्वाद देते हुए पास जाकर बैठ गये। बहुत देर तक यहां वहां की बातें होती रहीं। अन्त में प्रयोजन का प्रसंग छिड़ा। पुरोहित जी ने दीनानाथ का पत्र श्रीराम के हाथ पर रख दिया। श्रीराम ने पत्र पढ़ा। बड़ी देर तक सोचते रहे।

फिर कहा, "पुरोहित जी! पत्र में, अपनी कन्या का विवाह उनसे साथ कर देने से मेरी जो भलाई की बात लिखी है, वह मैं अच्छी तरह से समझता हूं। इस सम्बन्ध से मुझे जो लाभ होगा, सो मैं जानता हूं। पर क्या करूँ? लाचार हूं। ऐसा नहीं कर सकता। मेरी ओर से उनसे विनीत भाव से कह दीजियेगा कि मेरी इस धृष्टता को क्षमा करें।"

पुरोहित जी जानते थे कि क्षुधा से विचलित अतिथि को भी मनाना पड़ता है और कभी तो उसके साथ धोंगाधोंगी भी अवश्य करनी पड़ती है। अतएव वे बोले, "यजमान जी! आप के ऐसा न करने में विवश होने का तो मुझे कोई कारण स्पष्ट रूप से नहीं दिखायी देता। बात क्या है? आपको लक्ष्मी-पुत्र दामाद प्राप्त होगा। आपकी कन्या बड़े घर में जाकर आनन्द पूर्वक अपने दिन व्यतीत करेगी। ऐसा अच्छा सुयोग, मैं कहता हूं, आपको कभी न मिलेगा। इसे हाथ से जाने न दीजिये, नहीं तो आपको पीछे पछताना पड़ेगा। मेरा कहना मानिये। मैं यह बात केवल आपकी भलाई ही के लिये कह रहा हूं; नहीं तो मेरा कुछ अटका नहीं है, जो मैं आपको इस प्रकार समझाऊँ।"

श्रीराम बड़ी असमञ्जसता का भाव दिखा कर बोले, "आप को मुझे कुछ समझाना नहीं पड़ेगा। मैं सब समझता हूं। क्या करूँ? विवश हूं। कई एक कारण ऐसे आ पड़े हैं कि मैं अपनी

कन्या का विवाह करने में बिलकुल ही असमर्थ हूं। क्षमा कीजिये।"

पुरोहित जी कब छोड़ने वाले थे। उन्होंने समझा, श्रीराम अपने वाक्यों से अपने आर्थिक अभाव का अर्थ प्रदर्शित करना चाहते हैं। चट बोले, "मैं आपका अभिप्राय समझ गया हूं। कदाचित आप यह कहना चाहते हैं कि आपकी आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं है। इसीलिये आप एक जमींदार को अपनी कन्या देने में संकोच करते हैं।"

श्रीराम ने सोचा, यदि यह ऐसा ही समझ कर मेरा पिंड छोड़ दें, तो अच्छा है। फिर प्रगट में कहा, "हां, मेरा यही अभिप्राय है। मैं एक साधारण व्यक्ति हूं। एक बड़े जमींदार से अपना सम्बन्ध कैसे स्थापित कर सकता हूं। प्रीति, बैर और विवाह बराबरी में होना चाहिये। यह अनमेल विवाह अनुचित होगा।"

पर यहां तो पुरोहित जी तन कर बैठे थे। पीछे कैसे हट सकते थे। ज़रा गम्भीर वाणी में बोले, कि जिसमें उनके शब्दों का प्रभाव श्रीराम पर अधिक पड़े, "आप किसी भी बात की चिन्ता न करिये। इस विवाह में मैं केवल आपकी सम्मति भर चाहता हूं। फिर तो मैं सब ठीक कर लूंगा। आप बैठे बैठे देखते रहियेगा। रही बराबरी की बात सो यह सम्बन्ध स्थापित हो जाने पर आप साधारण नहीं कहे जावेंगे। तब तो आप धनी जमाई के श्वसुर कहलायेंगे।"

श्रीराम ने देखा, बात तो बढ़ती ही जाती है। पुरोहित जी के इस प्रकार सत्तू बाँध कर पीछे पड़ने से उन्हें कुछेक क्रोध भी हो आया। पर उसे भीतर ही दबा कर अनमने भाव से बोले, "यह सब तो ठीक है किन्तु मैं विवाह करना ही नहीं चाहता।"

इस बात की ठेस से पुरोहित जी को ऐसा ज्ञात हुआ, मानों उनका हृदय कुछ निर्बल हो गया हो। नेत्रों के सन्मुख थोड़ी देर के लिये अंधेरा छा गया और सैकड़ों तारे इधर से उधर जाते हुए दिखायी देने लगे। कुछ ठहर कर उन्होंने कहा, "आप तो विचित्र जीव जान पड़ते हैं। क्या अपनी कन्या को कुँवारी ही रखेंगे?" पुरोहित जी के वाक्य से कुछ कुछ क्रोध झलकता था।

अब तो श्रीराम के हृदय का बांध टूट गया। जो कुछ कहना था, उसे स्पष्ट रीति से खुले हुए शब्दों में कहने का निश्चय कर लिया। उन्होंने कहा, "ऐसे विवाह करने की अपेक्षा कन्या को कुँवारी ही रखना उत्तम है। दामाद सम्पत्तिशाली है; तो क्या कन्या सम्पत्ति को लेकर चाटेगी? जब वर ही योग्य नहीं है, तो धन क्या करेगा? धन किसी को चाहे जो दे सके, पर वह किसी को युवावस्था नहीं प्रदान कर सकता। आप क्या चाहते हैं कि मैं अपनी सुकुमार बालिका को बूढ़े के गले में घंटी के सदृश बांध दूँ? क्या विवाह भी कोई दिल्लगी है। क्या आप चाहते हैं कि मैं अपनी दुलारी को क़ब्र में पैर

लटकाये हुए व्यक्ति के निकट बलिदान कर दूँ! यह आप ही कह सकते हैं कि एक बूढ़े के हाथ अपनी कलेजे के टुकड़े को सौंप देने में मेरी भलाई होगी। दूसरा कोई इस बात को अपने मुख से नहीं निकाल सकता। आप कहते हैं, ऐसा करने से मैं साधारण कोटि से उच्च कोटि का मनुष्य हो जाऊँगा। उच्च क्या पर्वत हो जाऊँगा? क्या कोई कभी अपनी आंखों की पुतलियों को निकाल कर अपने को उच्च देख सका है! जो मन में आवे वही न बक जाया करिये। ज़रा होश की दवा कीजिये। श्रीराम अत्याधिक उत्तेजित हो पड़े थे। क्रोध से समस्त अंग कांप रहा था। होंठ फड़क रहे थे। आंखें लाल हो गयीं थीं। पुरोहित जी नहीं जानते थे कि अन्त में इस तरह लंका-काण्ड उपस्थित हो जायगा; नहीं तो वे श्रीराम से बात तक न करते। वे मन ही मन यह सोच बहुत लज्जित हो रहे थे कि कोई इस समय दोनों के निकट आ जाय, तो क्या कहे। पुरोहित जी भीगी बिल्ली की तरह दुम दबाये बैठे थे। उनका मन न जाने कैसा हो रहा था। कैसी बला में आ फँसे! बड़ी देर तक 'किंकर्त्तव्य विमूढ़' से बैठे रहे। फिर कठिनता से अपने हृदय की सारी शक्ति को समेट कर कहा, "यजमान जी! शान्त होइये। शान्त होइये।"

यजमान भला फिर काहे को शान्त होने चले थे। एक बार का छेड़ा हुआ सर्प फिर शान्त होकर नहीं बैठता। बड़ी ज़ोर से दोनों हाथों को परस्पर मलते हुए कहते ही गये, "आप

अपने ज़मींदार की ओर से यह लोभ दिखा किसको रहे हैं। इस लोभ के कारण मैं अपना कर्त्तव्य नहीं भूल सकता। यह रुपयों का जाल जाकर किसी और ही जगह बिछाइये। 'इहां न लागहिं राउर माया'। आप समझते होंगे, मैं विना रुपये के अपनी कन्या का ब्याह कर ही नहीं सकता। यदि उसका विवाह हो सकता है, तो आपके ज़मींदार ही की बदौलत। क्यों? मैं सब बातें जानता हूं। मुझसे कुछ छिपा नहीं है। सैकड़ों जगह विवाह के पैग़ाम भेजे जा चुके हैं। न जाने कितने स्थानों पर जाकर नाक रगड़ा है। जहां गये वहां ही हँसी हुई। मुझे दरिद्र जान कर समझा, ये ठीक ठीक है। जल्दी हाथ में आ जांयगे। पर ऐसा नहीं हो सकता। मैं दरिद्र हूं, पर निर्बुद्धि नहीं हूं। सब चालें समझता हूं। मुझे अपनी कन्या का विवाह कर देने में कुछ भी कठिनता नहीं है। किसी सुपात्र को खोज, कन्या को ले जा, उसके हाथों में सौंप दूंगा। कहूंगा, यह मेरी हृदय-सर्वस्व है। यह मेरे हृदय-समुद्र की सर्व-श्रेष्ठ मणि है। इसके अतिरिक्त मेरे पास कुछ नहीं है। इसको आप अपनी चरण-सेविका की भांति ग्रहण कीजिए। क्या मजाल कि वह फिर नाहीं कर दे।" अन्त के कुछ शब्द धीमे स्वर से निकलने लगे थे। जान पड़ता था गुस्सा कुछ ठंडा पड़ गया है। पर फिर भी अब पुरोहित जी का कुछ बोलने का साहस नहीं रह गया था। 'अब पुनि कहब जीभ करि दूजी।'

चिन्ता।

रोहित जी से सब समाचार सुन कर दीनानाथ चिन्ता सागर में गोते खाने लगे। हृदय एक बारगी ही अस्थिर हो पड़ा। जैसे समुद्र में तूफ़ान आता है, वैसे ही उनके हृदय में भी हलचल होने लगी। मुख बिलकुल कुम्हला गया, मानो आधी जान निकल गयी हो। विवाह की ओर से बिलकुल ही हताश हो गये। उनके आशा रूपी वृक्ष की जड़े खोखली हो गयीं। मृग जल की भाँति पहिले का समस्त दृश्य हवा होगया। आंखों की सारी चमक जाती रही। पलंग पर बैठने को किया तो गिर पड़े। लेटे ही लेटे सोचने लगे। अब क्या करना चाहिये? क्या मेरा हठ व्यर्थ हो जायगा? उन्हें अपने विवाह न होने का इतना दुःख नहीं था। कष्ट था, तो इस बात का कि विवाह न करने पर मैं लोगों की दृष्टि से बिलकुल गिर जाऊँगा। वे मुझे तुच्छ समझने लगेंगे। उनके सन्मुख मैं अभिमान से माथा ऊँचा न कर सकूंगा। मेरी आत्मिक स्वतंत्रता छिन जायगी। फिर मैं किसी योग्य न रह जाऊँगा। मेरा सम्पूर्ण प्रभाव उन पर से उठ जायगा। सब लोग मेरी हँसी मेरे मुख पर ही करने लगेंगे।

बुढ़ापे में विवाह की इच्छा हुई थी। किसी ने अपनी लड़की नहीं दी। अपना सा मुंह लेकर रह गया। भला मैं इसे कैसे सह सकूंगा! मुझे विवाह करना ही होगा, चाहे जैसे करूँ। किन्तु, कैसे करूँ? उस दिन चिन्ता के कारण सन्ध्या को भी वे टहलने नहीं गये। लेटे ही रहे। कई मित्र बुलाने आये। तबियत ठीन न रहने का बहाना कर दिया।

करवट बदलते बदलते आधी रात बीत गयी। नींद नहीं आयी। सारे शरीर से पसीना चूने लगा। हृदय घबड़ाने लगा। दरी उठा कर दीनानाथ छत पर चले आये। जाड़े का समय था। कड़ाके की ठंड पड़ रही थी। किसी का साहस नहीं होता था कि ऐसे समय में बिछौना त्याग कर खुली हवा में आवे। फिर मानसिक चिन्ता की गर्मी के कारण दीनानाथ को चैन नहीं पड़ी। ऊनी चैस्टर और क़मीज़ उतार कर अलग रख दी। नील नभ-मंडल में शरद ऋतु का पूर्ण चन्द्र अपनी पूरी छटा दिखा रहा था। बराबर बादलों के बीच में घुस कर उनमें से बाहर निकल आता था। दीनानाथ वही देखने लगे। अहा, चन्द्रमा कैसा सुन्दर है! कैसे स्वतन्त्र रूप से आकाश में विचर रहा है? वह चिन्ता रहित है। मैं भी यदि उसी की भांति चिंता हीन होकर आकाश में फिरा करता, तो कैसा अच्छा होता। दीनानाथ इस ध्यान में ऐसे हुये कि वे स्वयं ही एक ग्रह बन कर विस्तृत मग में विचरने लगे।

इसी समय किसी ने रात्रि की घोर निस्तब्धता को भंग करते हुए अपने मधुर स्वर से मनोहर अलाप भरते हुए बड़े लय के साथ गाया—

"सम्पति सुख को मूल।
सम्पति सुख को मूल, सुनो हो भाई,
सम्पति सुख को मूल॥
सम्पति सगरे काज निवारै, मेटै हिय को शूल॥
सम्पति सुख को मूल।
सम्पति सुख को मूल, सुनो हो भाई,
सम्पति सुख को मूल॥

अचानक गान की तान मन में समा गयी। हृदय की मुर्झाया हुई कली खिल गयी। इस गीत ने मानों दीनानाथ की आसन्न-मरण आत्मा में अमृत छिड़क दिया। आशा-लता हरी हो गयी। देह हलकी हो गयी। सारे शरीर में स्फूर्ति छा गयी। बिजली की सी चैतन्यता आ गयी। उठ कर ताली बजाकर वे नाचने लगे,—

"अहाहा! सम्पति सुख को मूल।"

माया का जादू।

व देखा न ताव। दीनानाथ श्रीराम के घर आ धमके। बिना कुछ विश्राम लिये ही हांफते हुए उन्होंने इशारा किया। पुरोहित जी ने थैली उड़ेल कर सामने रख दी। श्वेत चमकती हुई असंख्य मुद्राओं का ढेर लग गया। श्री राम की आंखें चौंधिया गयीं। जैसे बिजली की तीक्ष्ण ज्योति के एक बार सन्मुख आ जाने पर अन्य सारी वस्तुऐं अन्धकार में लीन जान पड़ने लगती हैं, उसी प्रकार रूप्ये की तेज़ चमक को श्रीराम के देख लेने पर उन्हें चारों ओर घोर अन्धकार दिखायी देने लगा। बाह्य अन्धकार के अतिरिक्त उन्हें आभ्यन्तरिक अन्धकार भी दृष्टिगोचर हुआ। ऐसा जान पड़ने लगा, मानों बुद्धि और ज्ञान ने उसका साथ छोड़ दिया हो। हाड़-मांस के पुतले की भांति एक टक उसी ज्योति-स्वरूप की ओर देखते रहे। श्रीराम बहुधा कहा करते थे, मैं करोड़ों पर लात मारने वाला मनुष्य हूं। आज हज़ारों के ढेर को अपने पैरों के पास देख कर अपने आप को भूल गये।

दीनानाथ ने देखा कि चक्र चल गया है। मछली ने कांटा निगल लिया है। ज़रा ज़ोरदार शब्दों में बोले, "देखते क्या हैं? गिन लीजिये। पूरे दस हज़ार हैं। एक पाई भी कम नहीं।" श्रीराम ज़रा चिहुंके। फिर रुपया-राशि की ओर उनका मन खिंच गया। "ये सब आप के हो चुके।" श्रीराम ने अपना सिर ज़रा ऊपर को उठाया। दीनानाथ की आंखें भी ज़रा ऊपर को गयीं। एक ने दूसरे को देखा। श्रीराम ने देखा कि दीनानाथ के हृदय का आह्लाद उनके मुख के चारों ओर फूट फूट कर निकल रहा है। उन आह्लाद की किरणों से आच्छादित मुख को अवलोकन कर वे मोह गये। उस समय वह मुख उन्हें परम सुन्दर जान पड़ा। उसी क्षण उस मुख पर एक दूसरे मुख की छाया दिखायी दी। दृष्टि फेरी। पुरोहित जी सामने थे। पुरोहित जी कुछ कुछ मुस्कुरा रहे थे। उसी प्रकार की मुस्कुराहट बिलकुल वही मुस्कुराहट उनकी आंखों में से भी निकल रही थी। उन मुस्कुराहटों का व्यङ्ग श्रीराम नहीं सह सके। तलमला गये। एक बार फिर उस कुत्सित कार्य की ओर से उनके हृदय में घृणा उत्पन्न हो गयी। एक बार उन्होंने फिर पुरोहित जी को तुच्छ दृष्टि से देखा। पर तब भी वहां श्वेत-समूह उसी प्रकार से रखा था। उसकी भक्ति में वे फिर तल्लीन हो गये।

दीनानाथ के फेंके हुए रुपयास्त्र ने श्रीराम को मोह कर पूर्णतया अपने आधीन कर लिया। मन्त्र-मुग्ध सांप की तरह श्रीराम दीनानाथ के वशीभूत हो गये। जैसे चकोर चन्द्र को लख कर

मोहित हो जाता है, उसके मुख से शब्द नहीं निकलता; उसी प्रकार मोह से शिथिल श्रीराम ने मौन-व्रत धारण किया। एक बार उन्होंने अपने विचारों का खण्डन करने वाले पुरोहित जी के समक्ष कड़ी फटकार के साथ एक व्याख्यान दे डाला था। आज उनका मुख बन्द है, मानों सीसे से जोड़ दिया गया हो, एक शब्द भी नहीं निकलता। रुपये की महिमा बड़ी प्रबल है।

बरात और भेंट ।

बड़ी धूमधाम से बारात आयी । इस भारी बारात की खबर दूर दूर तक बिजली की भांति फैल गयी। स्थान स्थान से लोग इसकी शोभा देखने के लिये आने लगे। खूब हौरा मचा । मोटर, टमटम, बग्घी, तांगे, हाथी, घोड़े इत्यादि की भरमार थी। बड़ा जमाव था। कई प्रकार के कौतुक इस बारात में थे। इन्हीं से नेत्र तृप्त करने के लिये सहस्रों की संख्या में मनुष्य टिड्डी दल की भांति टूटे पड़ते थे। एक विचित्र दृश्य यह था कि एक हाथी पर एक बड़ा लम्बा चौड़ा सन्दूक रखा हुआ था। उसके चारों ओर शीशे जड़े हुए थे। उन पर महाभारत की चलती फिरती तस्वीरें दिखायी देती थीं। लोग बड़े चाव से देख रहे थे। गांव वालों ने भला ऐसी विचित्रताएं कभी काहे को देखी होंगी। जो सुनता था, वही घर का काम काज छोड़कर दौड़ा आता था।

इस विवाह में दीनानाथ ने अपने दोनों हाथों से बहुत सा धन लुटाया। कई काम ऐसे किये कि वे सर्व-प्रिय हो गये। लोग

उनका नाम आदर से लेने लगे। तमाम दरिद्रों को भोजन और वस्त्र इस तरह से बांटा कि आस पास के कई गांवों तक में कोई भूखा और नङ्गा न दिखायी दिया। इस सुकर्म से मित्र और शत्रु सब वस में हो गये। "बूढ़े का विवाह" भूल कर लोग कहने लगे कि ज़मींदार साहब का विवाह हुआ है।

विवाह का कार्य पूरा हो जाने पर दीनानाथ स्त्री को घर लाये। इच्छा पूरी हुई। जिस अपमान का डर था, वह अब न रहा। अब वे अपना गर्व से गौरवान्वित शीश स्वतन्त्रता पूर्वक ऊँचा उठा सकते थे। हृदय की सारी दुर्बलता और दुःख दूर हो गया था। नदी में रहने वाले स्वतन्त्र मगर की भांति वे पृथ्वी पर स्वच्छन्दता से विचरने लगे। कुछ दिन बड़े चैन से कटे एक दिन रात को दीनानाथ ने स्त्री से पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है।"

उसने उत्तर दिया, "आपको तो मेरा नाम मालूम होना चाहिये।"

दीनानाथ—"भला बिना किसी के बताये हुए मुझे तुम्हारा नाम कैसे मालूम हो सकता है?"

वह—"बिना किसी के बताये हुए ही आपको मेरा नाम मालूम हो जाना चाहिये।"

दीनानाथ—"तुम्हारी बात तो बिलकुल ही समझ में नहीं आती। यह कैसे संभव हो सकता है?"

वह—"आपको इस स्पष्ट बात के भी संभव होने में सन्देह है। बड़े आश्चर्य की बात है? आप ने मुझे रुपया देकर मोल लिया है। मेरा नाम रुपिया है।"

दीनानाथ—"तुम तो हँसी करती हो।"

रुपिया—"वाह! इस में हँसी की कौन सी बात है! मेरा नाम सचमुच ही रुपिया है। यदि ऐसा न होता, तो आप मुझे रुपये से कैसे मोल ले सकते। मैं कभी रुपये द्वारा ख़रीदी जाऊँगी; इसी से मेरा नाम आरम्भ ही में रुपिया रखा गया था।

दीनानाथ—"अच्छा बोलो मेरा क्या नाम होना चाहिये?"

रुपिया—"क्यों? यह तो कोई कठिन बात नहीं है। मैं दीन के गृह में जन्म लेने के कारण दीन हूं। आप ने कृपा कर के मुझे शरण दिया है—आप मेरे स्वामी अथवा नाथ हैं। आप का नाम दीनानाथ होना चाहिये।"

दीनानाथ अपनी स्त्री की बातें सुन कर बड़े चकित हुए? इसमें इतनी प्रखर बुद्धि कहां से आ गयी।

रुपिया की चिन्ता।

पिया ने शीघ्र ही मालूम कर लिया कि उसके हृदय में बसी हुई स्वर्ण-प्रतिमा अन्य कोई नहीं—उसके पति का भाई ही है। जब तक उसे यह नहीं ज्ञात था, वह बड़ी बेचैन रही। यह कोई पहेली नहीं थी, जिसके लिये उसे सिर मारना पड़ता। उसके ध्यान की मनोहर मूर्ति, जब कि उसी घर में थी, जिसमें कि वह थी, तब वह दो चार दिन में अवश्य ही उसको दिखायी देती और वह उसका परिचय जान सकती। किन्तु रुपिया को इतना धैर्य कहां? उसने स्वयं ही प्रयत्न कर के अपनी चाह की वस्तु को खोज निकाला, तब ही कुछ निश्चिन्त हुई और उसके मुख से हलकी सांस निकली। उसका नाम था, सखाराम। यह मधुर शब्द प्रत्येक समय उसके कानों में गूंजा करता था और उसकी मनोहर मूर्ति प्रत्येक क्षण उसके नेत्रों के आगे नाचा करती थी। सखाराम उसका आराध्य देव हो गया और रुपिया उसकी अनन्य भक्त बन गयी। हर समय वह उसी की भक्ति में मग्न रहा करती थी।

दीनानाथ जब तब अपनी पत्नी को चिंतित् देखा करते थे इसका कुछ कारण नहीं समझ सकते। घर में किसी बात की कमी नहीं है। फिर उसकी चिन्ता का क्या कारण है? खाने पीने की किसी प्रकार की कमी नहीं है। घर में घी-दूध भरा पड़ा है। नाना भांति के मेवा-मिष्टान्न सब समय मौजूद रहते हैं। पहिरने-ओढ़ने के लिये रंग-बिरंगे, सूती, ऊनी और रेशमी वस्त्र सन्दूकों में गंजे पड़े हैं। फिर क्या चाहिये। मैं भी उसे जी से प्यार करता हूं। एक दिन दीनानाथ पलंग पर पड़े थे। रुपिया उनकी छाती के सहारे टिकी हुई बैठी थी खिड़की से शीत काल के प्रातःकाल के बाल-सूर्य्य की बांकी अरुण प्रभा आकर रुपिया के मनमोहन मुख पर लोट रही थी। दीनानाथ मन ही मन प्रसन्न नेत्रों की राह से अपनी पत्नी की अनुपम सौन्दर्य्य-सुधा का पान कर रहे थे। अहा! कैसा सुन्दर मुख है। ऐसा कोमल है, जैसे कमल। पर यह कमल प्रातःकाल के समय भी कुछ कुछ सम्पुटित सा क्यों जान पड़ता है? यह विभिन्नता इसमें क्यों है? दीनानाथ ने अपने दाहिने हाथ की तर्जनी में कुल बल देकर अंगूठे के अग्र भाग से चिबुक पकड़ रुपिया के मुख को ऊपर उठाया। बड़े प्रेम से पूछा, "यह कमल मुख मुर्झाया हुआ क्यों है? हरिणी जैसे बन्दूक की आवाज़ सुनकर सहम जाती है और फिर क्षण भर ही में चैतन्य हो एक ओर को भागने लगती है, वैसे ही रुपिया का भी हाल हुआ। पहिले तो वह दीनानाथ के इस

अचानक प्रश्न से चौंक पड़ी। तुरंत ही उसने अपने को सम्हाला और मुस्करा कर कहने लगी, "नहीं तो, कुछ भी नहीं। कदाचित् आप मुझे कुछ चिन्तित देखते होंगे। इसका आप कुछ विशेष कारण न समझिये। यह तो सभी लोगों में देखा जाता है कि स्थान परिवर्तन करने पर उनका चित्त कुछ उचाट हो जाता है। मेरे लिये अभी यहां की वस्तुएं नयी हैं। यहां के सब काम नये हैं। सब ढंग नये हैं। यहां की यह बेरोक बहती हुई वायु भी मेरे लिये अपरिचित है। फिर प्रथम ही बार यहां आने के कारण मेरा कुछ उदास रहना एक साधारण सी बात है। इसके अतिरिक्त मैं अपने चिर परिचित माता-पिता की गोद से दूर कर दी गयी हूं। उनका स्मरण आ आने से मेरा कुछ चिन्तित हो जाना स्वाभाविक ही है। मेरे लिये आप कुछ सोच न करिये। कुछ ही दिनों में मेरी अवस्था सुधर जायगी।

बुद्धिमती रुपिया ने बात ऐसी जमा कर कही कि दीनानाथ पूरी तौर से समझ गये। उस पर ज़रा भी सन्देह नहीं कर सके। सच तो है, नये स्थान में आने से लोगों के हृदय पर कुछ कुछ उदासी छा ही जाती है। कुछ ठहर कर बड़ी सहानुभूति दिखाते हुए बोले, "यदि कहो, तो तुम्हे कुछ दिन के लिये तुम्हारे पिता के यहां भिजवा दूं। फिर जल्दी ही बुलवा लूंगा। दीनानाथ ने यह कह कर मानों दिखाना चाहा कि तुम्हारे सुख के लिये मैं तुम्हारे वियोग का कष्ट सह लूंगा। मुझे भले ही जल जाना पड़े, पर तुम्हारे अंगों में आंच न लगने

दूंगा। इसका उत्तर चतुर रुपिया ने इस प्रकार दिया, "मुझे यहाँ कुछ उदासीनता तो अवश्य जान पड़ती है, पर ऐसा कुछ बुरा नहीं मालूम देता। मैं अभी पिता के यहां नहीं जाना चाहती। "उदासीनता जान पड़ने पर भी बुरा क्यों नहीं मालूम देता? कदाचित् दीनानाथ ने समझा मेरी स्त्री मेरे लिये थोड़े बहुत कष्टों को परवाह नहीं करती। उसके यहां से न जाने के कारण मैं ही हूं। मेरे पास रहने की उत्कट लालसा से वह अपने पिता के घर नहीं जाना जाहती। किन्तु स्वयं रुपिया के हृदय में इन शब्दों का क्या अर्थ था यह वही जानती थी।

छेड़छाड़ ।

सखाराम का स्वभाव दूसरे ही प्रकार का था। वह स्वयं किसी नये व्यक्ति से हेल मेल बढ़ाना नहीं जानता था। साधारण जान-पहिचान के लोगों से बहुत कम बोलता था। कभी बाज़ार-हाट में मिल जाने पर उनसे साहेब-सलामत होजाती थी; नहीं तो वह भी नहीं। हां, जिन से वह खूब हिल मिल जाता था, उनसे दिल खोल कर बातें करता था। सखाराम को बहुतेरों ने अपना प्रिय बना लिया था, पर उसने अपनी ओर से कभी किसी को अपना मित्र बनाने का प्रयत्न नहीं किया। सखाराम एक बड़े जमींदार का भाई था। थोड़ जान पहिचान के लोग पहिले उसका स्वभाव न जानने के कारण बहुधा कह दिया करते थे, "बड़ा आदमी होने के कारण घमंडी है। किसी से बात तक नहीं करता। छोटे के साथ बात चीत करने में कहीं अच्छे नाम में बट्टा न लग जाय!" "पर बाद में जब कभी फिर उन्हें उस से बात करने का अवसर आता था, तब वे देखते थे कि सखाराम उनके साथ प्रेम से बात कर बड़ी शिष्टता से उनके प्रश्नों का उचित उत्तर देता है। वह इतनी नम्रता से बोलता था कि सुनने वाले

का हृदय पानी पानी हो जाता था। अपनी बात चीत में वह सदैव यह ध्यान रखता था कि कहीं अनजाने में कोई अनुचित शब्द मुख से न निकल जाय-जिस से किसी को अपना किसी प्रकार का अपमान जान पड़े। यह एक गुण उसमें ऐसा था कि जिसके कारण वह गांव भर में सब से अधिक सुशील गिना जाता था। छोटे बड़े सब उसे हृदय से चाहते थे और उस पर प्रसन्न रहते थे।

सखाराम का स्वभाव भली भांति न जानने के कारण पहिले पहिल रुपिया भी बड़े चक्कर में पड़ी। वह चाहती थी कि छेड़ छाड़ सखाराम ही की ओर से आरम्भ हो। पर यह नहीं हुआ उसकी यह धारण पूर्ण नहीं हो सकी। सखाराम को छेड़ छाड़ के लिये कई अवसर भी उसने दिये पर कुछ नहीं हुआ। वह चुप ही रहा। तब तो कई बार रुपिया ने यह सोचा, निरा मिट्टी का लोंदा तो नहीं है? कुछ भी हो इसके कानों पर जूं तक नहीं रेंगती। किन्तु धीरे धीरे वह सखाराम के स्वभाव से परिचित होगयी। तब स्वयं ही कार्य-क्षेत्र में अग्रसर हुई। कठिनता से कण्ठ किया गया पाठ शीघ्र ही नहीं भूलता, इसी लिये रुपिया समझती थी कि यदि एक बार भी सखाराम मुझे अनुराग की दृष्टि से देख लेगा, तो फिर वह हमेशा के लिये मेरा हो जायगा। सखाराम को अपनाने के लिये वह सदा दत्त चित्त हो प्रयत्न करने लगी।

पहिले तो वह छिपे ही छिपे निशाना मारने लगी। एक

दिन सखाराम अपने कमरे में आकर बड़े आश्चर्य में पड़ा। थोड़े ही घंटों में उसकी अवस्था बिलकुल ही बदल गयी थी। इसके पहिले समस्त वस्तुएं यहां वहां अस्त व्यस्त पड़ी हुई थीं। पलंग पर ढेर की ढेर पुस्तकें और समाचार-पत्र पड़े थे। नये और पुराने वस्त्र ज़मीन पर बिखरे थे। आलस्य के कारण सखाराम कोई वस्तु यथोचित स्थान पर नहीं रखता था। उस दिन देखा तो दंग रह गया। कमरा चमचमा रहा है। कहीं धूल का एक कण भी नहीं है। पलंग का पायताना दक्षिण की ओर पड़ता था। यह उठा कर दूसरे कोने में बिछा दिया गया है। उसकी चादर कुछ मैली हो जाने के कारण दूसरी स्वच्छ श्वेत चादर उस पर बिछा दी गयी है। पहिले के टेबिल-क्लाथ पर यहां वहां कई तेल और स्याही के धब्बे पड़ गये थे। वह अब बदल दिया गया है। एक स्थान पर समाचार पत्र सजे हुए हैं। पास ही मासिक पत्र की प्रतियें विधि-पूर्वक रखी हुई हैं। कुछ उत्तम पुस्तकें टेबिल पर हैं और बाक़ी की आलमारी में रख दी गयी हैं। दावात धोकर उसमें फिर से स्याही भरी गयी है। कुछ तस्वीरें एक कोने में पड़ी सड़ रही थीं। वे झाड़ पोंछ कर उत्तमता से दीवाल पर लगा दी गयी हैं। घड़ी क्लाक घड़ी कई दिनों से चाभी न दी जाने के कारण बन्द पड़ी थी। आज वह मनोहर 'टिक़-टिक़' का शब्द करके बड़ी शान के साथ अपने कांटे घुमा रही है। सब वस्तुएं अपने अपने योग्य स्थान पर हैं। बड़ी देर तक सखाराम

कमरे की प्रत्येक वस्तु को देखता रहा। इस नवीन प्रकार की सजावट का अवलोकन कर उसके हृदय में उल्लास हुआ। मन ही मन वह इस कार्य के करने वाले की बड़ाई करने लगा।

उस दिन से फिर सखाराम को प्रतिदिन किसी न किसी काम में कुछ नवीनता अवश्य देखने को मिलती। कभी किसी कागज़ पर उसका नाम लिखा हुआ मिलता। कभी कहीं कोई तस्वीर खिंची हुई दिखायी देती। कभी कुछ और ही विचित्रता देखने में आती। यह क्रम यहां तक बढ़ा कि सखाराम का सारा दिन और सारी रात इन्हीं बातों को सोचने में व्यतीत होने लगे। उसका ध्यान इस ओर क्यों आकृष्ट होगया था? क्योंकि इन नवीन कृत्यों में किसी व्यक्ति के एक प्रकार के प्रेम का आभास पाया जाता था। यह व्यक्ति कौन है सो वह अच्छी तरह से जानता था। किन्तु उसमें उसका नाम लेने का साहस नहीं था।

नवाँ परिच्छेद।

ढिठाई।

धीरे धीरे रुपिया ढीठ होगयी। वह सखाराम के सामने आने लगी। वह चाहती तो बहुत पहिले से उसके सन्मुख आ सकती थी। इसके लिये उसे कोई कुछ कह नहीं सकता था। पर उसके मन में पाप तो घुसा था, उसी की लज्जा के कारण वह बहुत दिनों तक सखाराम से अपने को छिपाती रही। जैसे जैसे उसका मन अपनी ओर खींचती गयी, वैसे वैसे ही वह अपने को उस पर प्रकाशित करती गयी। चालाक रुपिया बड़ी सावधानी से यह कार्य करती थी। पहिले वह थोड़ा आगे बढ़कर ठहर जाती थी। जब वह देख लेती थी और उसे विश्वास होजाता था कि सखाराम भी उतना ही उसकी ओर बढ़ गया है, तब कहीं वह आगे पैर बढ़ाती थी।

सखाराम रुपिया के कौशल के आगे नहीं टिक सका। रुपिया क्रमशः उसे इस प्रकार अपनी मुट्ठी में लाने लगी कि वह दूर भाग ही न सका। अनेकों प्रकार से वह सखाराम को अपनी ओर देखने पर बाध्य करती थी। वह कब तक सिर नीचा किये रह सकता था? उसे रुपिया की ओर देखना ही पड़ता था। सखाराम की आंखें ऊपर उठने पर रुपिया विचित्र प्रकार से उसकी ओर देखती थी। सखाराम को बोध होता

था, जैसे उसके नेत्रों में जादू का असर हो। एक बार उसकी ओर देख लेने पर वह अपनी आंखें उसकी आंखों पर से हटाने का प्रयत्न करने पर भी नहीं हटा सकता था। उसकी ओर एकटक दृष्टि से निहारना ही पड़ता था। सखाराम सोचता, यह कैसा जाल है। 'ज्यों ज्यों सुरझि भज्यो चहै, त्यों त्यों अरुझति जाय'।

रुपिया ने जब देखा कि कल्प-वृक्ष के फलने में अब विलम्ब नहीं है, तब वह सखाराम को और भी कष्ट पहुंचाने लगी। उसकी ओर वक्र दृष्टि से देखकर ऐसे भाव से मुस्कुराती कि बेचारे का हृदय पिघल जाता था। कभी कभी वह अपनी भौंह-कमान पर तीखे नैन-सर चढ़ा सखाराम के हृदय को लक्ष्य कर इस तरह से मारती कि वह अर्द्ध मूर्छित सा होजाता था। और भी वह न जाने क्या क्या करती थी।

अन्त में दोनों का परस्पर अनुराग होगया। यह अनुराग मुख से कह कर किसी ने प्रगट नहीं किया। इस अनुराग की बात चीत आँखों से हुआ करती थी। एक व्यक्ति अपनी आंखें दूसरे की आंखों पर जमा कर कहता था, मैं तुम्हें हृदय से प्यार करता हूं। दूसरा भी इसी प्रकार उसका उत्तर देता था। एक दूसरे की आखों को देखकर वे एक दूसरे के मन का भाव समझ लेते थे। समय समय पर वे गुप्त रीति से अपने हृदय के गुप्त प्रेम भी प्रगट करते थे। किसी को स्पष्ट रीति से अपने मन की बात कहने का साहस नहीं होता था।

दसवां परिच्छेद।

बात बढ़ गई।

रुपिया भोजन करके पलंग पर विश्राम करने के निमित्त लेट रही। वह स्वयं जितना कार्य नहीं करती थी, उतना उसका मस्तिष्क किया करता था। इस समय भी वह शांत नहीं था यहां वहां की दौड़ लगा रहा था। इसी अवस्था में रुपिया सो गयी। बहुत देर तक सोती रही। चिंता के कारण उसको नींद कभी अच्छी तरह से नहीं आती थी। इस समय भी वह नींद में ही पड़ी थी। उसी कच्ची नीद में उसके कर्ण-रन्ध्रों में एक परिचित मधुर स्वर सुनायी दिया। एक बार उसकी सारी देह कांप उठी; मानों समस्त शरीर में बिजली दौड़ गयी हो। फिर वह शांत हो गयी। उस मनो मुग्ध-कारी स्वर के सुनने के लिये देह की समस्त शक्ति मानो कानों के पास आगयीं। एक मन एक प्राण से रुपिया उस शब्द को सुनने लगी।

शनैः शनैः उसमें चैतन्यता आने लगी। थोड़ी देर में उसने धीरे से आंखें खोल दीं। इस समय भी वही मनोहर शब्द उसके कानों में अमृत छिड़क रहा था। कुछ देर तक एकाग्र मन से उसे सुनने पर रुपिया समझ गयी कि यह सखाराम का चित्त को चंचल करने वाला मनोहर गान है। उसने सखाराम को

कुछ गाते हुए अभी तक नहीं देखा था। वह नहीं जानती थी कि वह कुछ गा भी सकता है। परन्तु इस बात का उसे विश्वास था कि उसका स्वर अच्छा है और सुरीला है, यदि वह गावे तो बहुत अच्छा गा सकता है। उस समय वही सखाराम अपने कोमल कण्ठ से बारीक उतार चढ़ाव की आवाज़ निकाल रहा था। गीत का प्रत्येक अक्षर नहीं सुनायी पड़ता था। केवल उसकी लयमात्र कर्णगोचर हो रही थी। वही रुपिया को पागल कर देने के लिये यथेष्ट थी। वह अपने को सम्हाल नहीं सकी। मन को विचलित करने वाले अलाप-कर्त्ता की ओर बड़े वेग से लपकी।

दिन का तीसरा पहर था। आकाश में बादल छाये हुए थे। सूर्य के मेघाच्छन्न होजाने के कारण उसकी प्रकाशमयी किरणें पृथ्वी तक नहीं आ सकती थीं। चारों ओर कुछ कुछ अंधेरा छा गया था। जल की छोटी छोटी बूंदे एक एक दो दो करके टपक रही थीं। वायु 'सन् सन्' करके कदाचित किसी आवश्यक कार्य के लिये एक ओर झपटी हुई चली जा रही थी। रुपिया को भी उसी ओर को जाना था। वायु की तीव्रता के कारण उसकी गति द्विगुणित होगयी। आह्लाद-पूर्ण हृदय से सरसराती हुई वह अपने चितचोर की ओर बढ़ने लगी। वह बड़े वेग से जा रही थी। न जाने कैसे उसका शरीर इतना हलका हो गया था कि पैर पृथ्वी पर पड़ते ही न थे। चील की तरह ऊपर ही ऊपर चढ़ी जाती थी। उस समय भी

वायु की प्रतिकूलता के कारण गान की कांपती तान रुपिया को सुनायी दे रही थी।

दीनानाथ की अट्टालिका के पिछवाड़े की ओर एक सुन्दर नाना प्रकार के फल और फूलों से भरा हुआ उद्यान था। उसके ठीक बीच में एक भवन था। उसका नाम था आमोद-भवन। उसमें भिन्न भिन्न प्रकार की मन बहलाव की अगणित सामग्रियां रखी हुई थीं। अनेकों प्रकार के कौतुक एवं अद्भुत खेल थे। भाँति भांति के वाद्य विद्यमान थे। उस भवन में कई कमरे थे। एक में शतरंज, चौपड़ इत्यादि का सामान था। दूसरे में हारमो-नियम, सितार प्रभृत थे। इसी तरह किसी में कुछ किसी में कुछ था। ऊपर दुतल्ले पर एक बहुत बड़ा कमरा था। उसमें एक दम तस्वीरें ही तस्वीरें लगी हुई थीं। वहां एक से एक उत्तम मन को लुभाने वाली तस्वीरें थीं। इतनी तस्वीरें थी कि दीवाल का चूना कहीं भी नहीं दिखाई देता था। उसका नाम था चित्रालय।

उसी चित्रालय में सखाराम अकेला बैठा हुआ मन के उद्गार निकाल रहा था। सामने खिड़की थी। एक बेंत की कुर्सी पर बैठा उसी खिड़की पर झुका एकान्त में दिल खोल कर गा रहा था। खुली हुई खिड़की से बड़ी तेज़ी से सनी हुई हवा भीतर आकर उसके मुख और छाती से लिपटी जा रही थी। शुद्ध निर्मल वायु आंखों में घुसकर मस्तक को ठंडक पहुंचा रही थी। सखाराम हृदय के गूढ़तम प्रदेश से अविर्भूत आवेग से आलाप भर रहा था।

अचानक उसके स्वतन्त्र कार्य में बाधा पहुंची। आगे को उभरा हुआ वक्षःस्थल लिये हुये रुपिया हांफते हुये वहां आ पहुंची। वह इतने झपाटे से आई थी कि सखाराम सहम गया। किवाड़ के धड़ाके के साथ ही उसका गान भी बंद होगया। भौंचक्का होकर वह रुपिया के लाल मुख और जल-बिन्दुओं से अभिसिक्त सुन्दर कपोलों की ओर देखने लगा। रुपिया का चेहरा तमतमा रहा था।

थोड़ी देर तक रुपिया शान्ति पूर्वक अपना धधकता हुआ मुख लेकर कमरे में खड़ी रही। फिर एक दूसरी कुर्सी खींच-कर सखाराम के समक्ष बैठ गई। सखाराम अपना अलाप विस्मरण कर सुन्दरी रुपिया के अनूप रूप को निहारने लगा। उसे जान पड़ा मानों कटीले कटाक्षों वाली मनोरथ मूर्ति कलेजे को कीटे डालती है। ललित लवङ्गलता सी लचकीली देह पर हलके गुलाबी रंग की साड़ी उसके हृदय के टुकड़े टुकड़े किये डालती थी। सखाराम अतृप्त नेत्रों से उस माधुर्यमयी मूर्ति को देख मन ही मन उसकी निर्मलता का बखान करने लगा।

रुपिया ने मधुर मुस्कान के साथ कहा—आपने अपना गाना क्यों बंद कर दिया? साथ ही उसका हृदय धड़कने लगा। वह सखाराम से इस तरह खुल कर कभी नहीं बोली थी।

सखाराम के मुख से शब्द नहीं निकला। लज्जा से अवनत मस्तक हो वह धरती की ओर निहारने लगा।

रुपिया समस्त संकोच त्याग कर बोली—मैं देखती हूं आप

में लज्जा की मात्रा बहुत ही अधिक है। आप स्त्रियों की अपेक्षा भी अधिक लज्जा करते हैं। मुझे बड़ा आश्चर्य होता है। जान पड़ता है विधाता ने आपको स्त्री बनाते बनाते भूलकर पुरुष बना दिया है। क्यों है न यही बात? वह हंस पड़ी।

इस मीठी चुटकी से सखाराम को अत्याधिक अनन्द प्राप्त हुआ। वह भी हंस कर कहना चाहता था कि उसी ने आप को पुरुष बनाते बनाते स्त्री बना दिया है। क्योंकि आप में बहुत से लक्षण पुरुषों के से पाये जाते हैं। पर न जाने क्यों वह कहते कहते रुक गया। हंसी होंठ तक आते आते लोप होगई। इस बार भी वह कुछ नहीं बोला। तिरछी आखों से प्रकृति की शोभा और उद्यान की हरियाली देखता रहा।

यदि सखाराम रुपिया के मुख की ओर देखता तो उसे विदित हो जाता कि उसका यह मौनावलम्बन उसे भला नहीं लग रहा है। रुपिया ने अन्यमन स्वर हो कहा मालूम हुआ आप मुझ से बातें करना नही चाहते। लो मैं जाती हूं। यदि मैं पहिले से जानती होती कि आप यहां अकेले रहना ही पसंद करते हैं अथवा मेरा यहां आना आपको किसी प्रकार से खटकेगा तो मैं यहां कदापि न आती। अनजाने में मुझसे यह दोष हुआ है अतएव आशा है आप क्षमा करेंगे।

सखाराम के हृदय पर जैसे किसी ने ज़ोर से धक्का दिया हो। अचानक उसे चेत हुआ। यह क्या? रुपिया रुष्ट हो गयी!

आज उसे ज्ञान हुआ कि वह व्यवहारिक ज्ञान से सर्वथा ही वञ्चित है। वह किञ्चित मात्र भी किसी के मान-सम्मान का विचार करना नहीं जानता। शिष्टाचार के निमित्त किसी से दो चार मीठी बातें करना मानों सभ्यता के विरुद्ध हो। सखा-राम अपनी हीनता का अनुभव कर लज्जा से और भी गड़ गया। किन्तु उसने तुरन्त ही अपने को सम्हाला। रुपिया के सन्मुख खड़े होकर नम्र शब्दों में वह बोला, "क्षमा कीजिये। मुझे नहीं मालूम था कि आप ज़रा ही में इस प्रकार बिगड़ जाया करती हैं, नहीं तो मैं पहिले ही से इस बात के लिये अपने को होशियार रखता। मुझे बड़ा खेद है कि मुझसे इस प्रकार की धृष्टता होगयी भविष्य में यथाशक्ति मैं अपने द्वारा यह व्यवहार नहीं होने दूंगा, इसका आप विश्वास रक्खें। सच तो यह है कि मुझ में इतनी योग्यता ही नहीं है, कि मैं किसी से भली प्रकार दो एक बात तक कर सकूं। किसी से कुछ बात कर अपनी अयोग्यता दर्शाने में मुझे कुछ लज्जा मालूम देती है और कुछ न बोल कर चुप रहने से दूसरी कठिनता उपस्थित हो जाती है। विचित्र समस्या है? क्या करूं मेरी तो 'भइ गति सांप छछूंदर केरी"।

रुपिया फिर अपनी कुर्सी पर जम कर बैठ गयी। उसके अधरों पर फिर मुस्कुराहट की रेखा झलकने लगी। उसने कहा, "आप यह क्या कह रहे हैं? मुझे तो आप वाक्-विद्या के पूर्ण पण्डित जान पड़ते हैं"।

सखाराम—"यह कोरी बढ़ावे की बात है। मुझे इस प्रकार लज्जित न करिये।"

रुपिया-बात तो मैंने सत्य ही कही। आप अपने मुख से यह बात कैसे स्वीकार कर सकते हैं? अच्छा जाने दीजिये। आप खड़े हैं। बैठ जाइये। बैठकर बातें होने दीजिये।

सखाराम ने बैठते हुए कहा, "अच्छी बात है। कहिये।"

रुपिया—"मैं क्या कहूं आप ही कुछ कहिये। अच्छा हो यदि आप कुछ गाने की कृपा करें।"

सखाराम की हिचकिचाहट बन्द होगयी थी। उसने हंसते हुए कहा, आपका यह प्रथम अनुरोध मैं अवश्य ही पूर्ण करूंगा कहिये वैसे ही आप कुछ सुना चाहती हैं या हारमोनियम के साथ?

रुपिया—"क्या हर्ज है? हारमोनिम भी रख लीजिये।"

सखाराम ने छोटा हलका हारमोनियम लाकर खिड़की पर रख लिया। फिर उसके स्टाप खींच, धौंकनी खोल स्वरों पर अंगुलियां फेरने लगा। बहुत देर तक वह केवल सरगम ही बजाता रहा।

रुपिया ने ऊब कर कहा, "कुछ मुंह से भी बोलियेगा या यों हीं कान के परदे फाड़ने से क्या लाभ?

सखाराम हंस पड़ा। बोला, "बोलूंगा क्यों नहीं। कहिये आप क्या सुनना चाहती हैं?

"अविचल हो यह प्रेम हमारा।

जैसे गङ्ग यमुन की धारा॥"

हारमोनियम के पतले स्वर के साथ सखाराम की महीन आवाज़ मिल कर एक हो गयी। कमरा गूंज उठा। यह मनोहर ध्वनि रुपिया के हृदय में जाकर टकराने लगी। उसकी नस नस फड़क उठी। बाहर दीवाल पर फैली हुई माधवी लता को उसने हाथ बढ़ाकर तोड़ लिया। उसे चुटकी में ले मींजती हुई धरती पर पैर पटकने लगी। पायज़ेब का 'झनन्-झनन्' शब्द बीच बीच में बड़ा भला जान पड़ने लगा। वंशी-मुग्ध अजगर की भाँति रुपिया सखाराम की ओर देखने लगी। रुपिया ध्यान लगाकर सखाराम का गान सुन रही थी, उससे उत्साहित सखाराम की आँखें प्रसन्नता से नाचने लगीं। वह आप अपने को बड़ा भाग्य-शाली समझता था। और भी उमङ्ग से गाने लगा "—

"जैसे गङ्ग यमुन की धारा।

जैसे गङ्ग यमुन की धारा"॥

रुपिया मस्त हो झूमने लगी। वह एक दम गान के ध्यान में लीन हो गयी। अपने पराये की सुधि जाती रही। वह भी गुनगुनाने लगी,—

"अविचल हो यह प्रेम हमारा।

अविचल..................."

बहुत देर तक दोनों प्रेमी जमे बैठे रहे। किसी को समय

ग्यारहवाँ परिच्छेद

निमन्त्रण।

नों के संकोच-स्रोत का बाँध टूट गया। अब कोई किसी से बात चीत करने और उस की ओर देखने में लज्जा नहीं मानता था। वे एक दूसरे से खुल कर बोलते थे। प्रायः नित्य ही आमोद भवन के चित्रालय में बैठे हुये सौन्दर्य्यासक्तों के मध्य नाना प्रकार के आमोद और आलाप-प्रलाप हुआ करते थे। सखाराम ने घर से बाहर निकलना बिलकुल ही कम कर दिया। दोनों को एक दूसरे के देखे बिना कल ही न पड़ती थी। चटपट अपने आवश्यक कार्य पूरे कर वे आमोद-भवन की ओर चल पड़ते थे। प्रत्येक दिन की भाँति सखाराम दोपहर के कुछ पहिले चित्रालय में आकर बैठ गया। देखा, तो रुपिया अभी वहाँ नहीं आई है। अब आती ही होगी, सोच कर वह घूम घूम कर चित्रों को देखने लगा। सैकड़ों बार उन्हें देख चुका था। मन नहीं लगा, आकर आराम कुर्सी पर लेट रहा। लेटे लेटे बहुत देर होगई। रुपिया की कोई आहट नहीं मिली। आज क्या बात है? अभी तक क्यों नहीं आई? तरह तरह की आशङ्कायें उसके मन में प्रवेश करने लगीं। वह कई प्रकार के संकल्प-विकल्प करने लगा। उसका स्वास्थ्य तो नहीं बिगड़ गया? अभी प्रातःकाल तो मैंने उसे

देखा था। स्नान करके साड़ी पहिन रही थी। बहुत अच्छी थी। कहीं मेरे किसी अपराध के कारण मुझ से अप्रसन्न तो नहीं हो गई? अपनी जान में तो मैंने उसकी इच्छा के प्रतिकूल कुछ नहीं किया। अनजाने में यदि कुछ हो गया हो तो ईश्वर जाने या वह जाने। चिन्ता से शरीर कुछ शिथिल जान पड़ा। मस्तक एक ओर को झुक गया। आँखें बन्द हो गयीं।

दो बजे के पश्चात् किसी के झिझकोरने से सखाराम जागा। सामने रुपिया खड़ी थी। आनन्द से प्रातःकालीन कमल की भाँति मुख खिल उठा।

रुपिया ने कहा, "वाह! आप तो ख़ूब सोना जानते हैं। नींद ही नहीं खुलती। मैंने आपको कितना जगाया। आपने तो कुम्भकर्ण को भी मात कर दिया।"

सखाराम—सच ही! तब तो आपको बहुत कष्ट हुआ होगा। क्षमा कीजिये। अकेले बैठ कर आप ही की बात सोच रहा था। आलस्य से नींद आगई।

रुपिया—क्षमा तो ऐसे नहीं हो सकती।

सख़ाराम—तब कैसे हो सकती है।

रुपिया—मेरी आज्ञा मानोगे, इसका वचन देने पर।"

सखाराम—कौन सी आज्ञा।"

रुपिया—यह आपके वचन दे देने पर कहूंगी।"

सखाराम ने बिना ज़रा भी रुके हुये कहा, "अच्छा, मैं बचन देता हूं। आपकी आज्ञा का पालन करूंगा।"

रुपिया ने सखाराम की ओर हाथ बढ़ा कर कहा, "तो उठिये, चलिये।

सखाराम ने उठते हुये कहा, "कहाँ चलना होगा।"

रुपिया—मेरे कमरे मे।"

सखाराम—"क्यों ?

रुपिया—"आज आपका निमन्त्रण है।

सखाराम—"निमन्त्रण किसकी ओर से ?

रुपिया—"मेरी ओर से। मैंने स्वयं आपके लिये कई तरह की अच्छी चीज़ें बनाई हैं।

सखाराम—"देखता हूं। आपकी मुझ पर बड़ी कृपा है। अपने मुझ पर एक अनोखी ही आज्ञा की है। आप देखेंगी कि मैं कैसी उत्तमता से आपकी इस आज्ञा का पालन करूंगा।

रुपिया—"मुसकराई। सखाराम को साथ ले आमोद-भवन के बाहर निकल उद्यान को पार करती हुई अपने कमरे म पहुंची। हाथ पैर धुलाने के अनन्तर उसने सखाराम को आसन पर बैठाया। तब प्रेम पूर्वक थाली सजाकर सम्मुख रखी गई। पूरी, साग, हलुवा औटाया हुआ मीठा दूध और भिन्न भिन्न प्रकार के मिष्टान्न थे। अतिथि बड़ी रुचि और अत्यन्त उत्साह से भोग लगाने लगा। बीच बीच में लोटे का सुगन्धित जल गिलास में डालकर पीता जाता था।

रुपिया ने मीठा दूध बनाने में बड़ा परिश्रम किया था। उसने पूछा, कहिये, दूध कैसा है?"

सखाराम—"मानहुं अमित सुधा-रस धारा" ।

रुपिया ने हंस कर कहा, "वाह ! तुलसीदास जी वाह !

सखाराम—हंसी नहीं । सच ही बहुत अच्छा बना है ।"

रुपिया-"बहुत अच्छा "

सखाराम, हां । बहुत दिन हुए, एक दिन मैं अपने एक मित्र की बारात में......याद नहीं आता......कहीं गया था । वहां इसी तरह का दूध मिला था । वह अच्छा तो था, पर इसको नहीं पा सकता । यह उससे कहीं अधिक अच्छा है" ।

रुपिया—"सखाराम ! आप अपना विवाह क्यों नहीं करना चाहते ? मैंने सुना है, आप विवाह करना ही नहीं चाहते । यह क्यों ?

उत्तर न देना पड़े, इस लिये सखाराम ने गिलास मुंह से लगाया और बड़ी देर तक पानी पीता रहा । उसे रुपिया के सामने अपने विवाह की बात करने में लज्जा मालूम हुई । रुपिया मानने वाली जीव नहीं थी । उसने बात पकड़ ली । फिर कहा, "क्यों, बोलते क्यों नहीं ?

सखाराम बोला, "क्या ?" जैसे उसने कुछ सुना ही नहीं ।

रुपिया—"आप अपना विवाह क्यों नहीं करना चाहते ?

बिना कुछ कहे नहीं बचूंगा, सोचकर सखाराम ने कहा, अभी कौन सी जल्दी पड़ी है"

रुपिया—'जल्दी क्यों नहीं ! इतने बड़े हैं । अभी नहीं तो कब होगा ?

सखाराम—"जब होना होगा, तब हो जायगा।"

रुपिया ने कुछ ठहर कर कहा, "आपके भाई के दो विवाह हो चुके। आपने एक भी नहीं किया। यह ठीक नहीं हुआ। अच्छा होता, यदि इस बार उनका विवाह न होकर आप ही का होता। आपकी माता ने आप को इसके लिये समझाया भी था। आप मान क्यों नहीं गये?"

इसका क्या अर्थ? इसका अर्थ चाहे जो कुछ रहा हो। पर सखाराम ने इस से भी कुछ समझा, इस से वह स्थिर न रह सका। उसके हृदय में घोर आन्दोलन मच उठा। एक बार पलक उठा कर सामने बैठी हुई रुपिया को देखा। वह दृढ़ता से उसी की ओर देख रही थी। सखाराम को जान पड़ा, जैसे हृदय-भेदी दृष्टि से उसके मुख के उतार चढ़ाव को देख कर मन के छिपे हुए भावों को जान लेने का प्रयत्न कर रही हो। वह सहम गया।

बारहवां परिच्छेद।

आकर्षण शक्ति।

श्वर की लीला विचित्र और अगाध है। उसके अनोखे कार्यों का पारावार नहीं है। जैसे जैसे लोगों को विश्व की नवीनताएं ज्ञात होती जाती हैं; वैसे वैसे वे उसके चमत्कारों से अवगत होते जाते हैं। एक न एक आश्चर्य जनक बात का पता थोड़ा या बहुत काल में लगता ही रहता है। इस प्रकार नाना भांति के चमत्कारों का एक के पश्चात् एक लगातार विकास होते जाने से लोगों के मन में यह अटल विश्वास होगया है कि अभी अगणित अद्भुत बातें विश्व के अन्तर्गत इस प्रकार छिपी हुई हैं कि उनका किसी के ध्यान में आना भी असम्भव है। धीरे धीरे वे प्रकाश में आती जावेंगी और उनका यह क्रम कब अन्त होगा। यह कोई नहीं बता सकता।

बहुत से लोग चौंकेंगे। ईश्वर की इतनी विस्तृत सृष्टि एक ही शक्ति के आधार पर टिकी हुई है। वह है आकर्षण-शक्ति। यदि आकर्षण शक्ति न रहे, तो सब तितिर बितिर होजाय। समस्त ब्रह्माण्ड की एक भी वस्तु ज्यों की त्यों अपने स्थान पर स्थिर न रह सके। इस आकर्षण-शक्ति का प्रयोग नुसार फल

निकलता है । यदि दो वस्तुओं में यह शक्ति असमान रूप से हुई, तो अधिक शक्ति वाली वस्तु को अपनी ओर खींच लेगी। यदि दोनों वस्तुओं में समान रूप से यह शक्ति होगी, तो वे जहां के तहां स्थिर रह जावेंगे । इसी समान शक्ति के कारण ही सूर्य्य, चन्द्र इत्यादि ग्रहों में नियम बद्धता दृष्टिगोचर होती है और वे नियमित रूप से यहां से वहां जाते हुये दिखाई देते हैं । सूर्य्य पृथवी को अपनी ओर खींचता है और पृथवी सूर्य्य को उतनी ही शक्ति से अपनी ओर खींचती है । दोनों की आकर्षण शक्ति समान है इसलिये वे अलग ही रहते हैं । इसी को दूसरी प्रकार से यों समझाया जा सकता है कि दो समान शक्ति के बालक एक रस्सी के दोनों छोर पकड़ कर अपनी अपनी ओर खींच रहे हैं । क्या होगा सो स्पष्ट ही है । कोई भी एक दूसरे को अपनी ओर नहीं खींच सकेगा । उनका अन्तर सदैव समान ही रहेगा ।

सखाराम और रुपिया दोनो का एक दूसरे पर अनुराग है । दोनों एक दूसरे की ओर प्रेमाकर्षण-शक्ति द्वारा खींचे जा रहे हैं । दोनों की ओर से समान शक्ति का प्रयोग हो रहा है । जितना कि सखाराम रुपिया के प्रेम-पाश में पड़कर शथिल होता जा रहा है, उतनी ही रुपिया भी सखाराम को अनुपम रूप द्वारा मोहित होकर शिथिल होती जा रही है । किसी एक में भी प्रेम का दूसरे की अपेक्षा अधिक प्राबल्य नहीं है कि जिससे वह दूसरे को अपनी ओर खींच सके । इसी से वे परस्पर एक दूसरे द्वारा खींचे जाने पर भी अलग अलग ही हैं । सामा-

तेरहवाँ परिच्छेद।

नाग पञ्चमी की विजय।

ल के दिन नाग पञ्चमी है। गांव के कुछ लोग दीनानाथ को चारों ओर से घेर कर बैठे हुये हैं और उनसे प्रत्येक वर्ष की नाईं इस शुभ अवसर पर अपने द्वार पर अखाड़ा सजाने का हठ कर रहे हैं। दीनानाथ अपने हर एक मित्र को बड़ी नम्रता से यथोचित उत्तर दे इस विषय पर अपनी अस्वीकृति प्रगट कर रहे हैं। उनके हठीले मित्र नहीं मानते। बराबर अपनी ही रट लगाये चले जा रहे हैं।

दीनानाथ ने कहा, "देखो भाई! मुझे तङ्ग न करो। प्रत्येक नाग पञ्चमी के दिन अपने द्वार पर जमाव करने के कारण मेरी कुछ न कुछ क्षति अवश्य हो गई है। तीसरे वर्ष मेरी स्त्री का देहान्त हो गया था। अभी पार साल इसके कुछ ही पश्चात् मेरी माता स्वर्ग को चली गयीं। अब आपकी क्या इच्छा शेष रह गयी है? पिछला वाक्य उन्होंने कुछ रोष के साथ कहा।

अब इसके आगे किसी का साहस नहीं हुआ कि कुछ बोले। अमरनाथ कुछ अधिक मुंह लगे हुये थे। फिर भी उन्होंने ७ बने को बहुत सम्हाल कर अपना एक एक अक्षर कांटे पर

रखते हुये कहा, "भैय्या ईश्वर न करे, कभी आपका कुछ बुरा हो। पर मैं यह कभी नहीं मान सकता कि नाग पञ्चमी के उत्सव के कारण ही आपके वे अनिष्ट हुये थे। जो होना होता है, वह होता ही है। दैवेच्छा प्रबल है। कौन कह सकता है कि यदि आप उन दिनों में यह उत्सव न करते, तो यह अनर्थ रुक जाता। यह वर्ष भर का त्योहार है। त्योहारों को मानने से भले के अतिरिक्त बुरा कदापि नहीं हो सकता। फिर यह आपकी इच्छा है; इसे मानें अथवा न मानें। यदि त्यौहार बुरे ही होते, तो लोग इन्हें क्यों मानते। मेरी छोटी बुद्धि में तो यही आता है। कि अपने पूर्व विद्वान् ऋषियों ने हम लोगों में इतने अधिक त्योहार इसी लिये बनाये हैं कि जिसमें समय समय पर हमारा सांसारिक झगड़ों से दुःखित मन बहलता रहे और हम एक स्म से अधीर न हो जावें। त्योहार के दिन हम लोगों को चाहिये कि अपने समस्त दुःख-दर्द विस्मरण कर आनन्द के सागर में उतर पड़ें और अपनी अशान्तता, शान्ति की अगणित लहरों में लीन कर दें।"

अमरनाथ के लम्बे उपदेश ने अपना प्रभाव दीनानाथ पर अवश्य अच्छा डाला। वे कुछ क्षणों तक सोचते रहे। उनका निज का अनुभव था कि त्योहार के नाम के श्रवण मात्र से हृदय का कुछ बोझ हटा हुआ सा जान पड़ने लगता है। फिर भी वे इसपर अपनी सम्मति नहीं दे सके। अब लोग हताश होकर इधर उधर देखने लगे।

इतने ही में सखाराम वहां आता हुआ दिखाई दिया। लोगों के हृदय में कुछ कुछ आशा का सञ्चार हुआ। उन्हें मालूम था कि दीनानाथ के हृदय के निश्चत विचारों के पलटने की शक्ति केवल सखाराम ही में है। सखाराम सब को अभिवादन कर और अपने भाई के पैर छू एक स्थान पर बैठ गया। उसके बैठते ही बैजनाथ उदयचन्द् और अमरनाथ एक साथ ही बोल उठे। "हम लोगों की इच्छा है कि इस वर्ष भी नागपञ्चमी का उत्सव खूब उत्साह के साथ हो। आपकी क्या राय है?"

सखाराम को अपने भाई के हृदय की बात क्या मालूम। उसनें बिना आगा पीछा किये कह दिया, "इसमें मेरी राय की क्या आवश्यकता है? यह होना ही चाहिये और होगा ही।" तत्पश्चात् वह अपने भाई के मुख की ओर देखने लगा।

सखाराम दीनानाथ का बहुत आदर करता था। वह उनकी कभी कोई आज्ञा नहीं टालता था। दीनानाथ भी उस पर अत्यन्त प्रेम करते थे। जब उनके पिता जीवित थे, तब वे सखाराम का बहुत अधिक लाड़ करते थे। उनके न रहने पर दीनानाथ भी पिता के लाड़ले पुत्र के सुखी रखने का अनेक उपाय करना नहीं भूले। वे उसकी हर एक इच्छा को पूर्ण करते थे। प्रत्येक क्षण उसका ध्यान रखते थे। ऐसा कभी कोई अवसर अपने भरसक नहीं आने देते थे कि जिससे उसके हृदय को कुछ चोट लगे। सखाराम उनको बहुत ही प्यारा था। वे उसे अपनी आँखों की पुतली की तरह रखते थे। इस समय उन्होंने देखा

कि उनका दुलारा भाई दङ्गल करने के पक्ष में है। उनका विचार तुरन्त ही बदल गया। अपने किये हुये पूर्व आक्षेपों को बिलकुल भूल गये। प्रेम से उसे अपनी ओर खींचते हुये बोले, "अच्छा, कल नागपञ्चमी का आनन्द मनाया जायगा। सब लोग प्रसन्न हो गये। ज़मींदार साहब छोटे भैय्या का मन अवश्य ही रखा करते हैं।

बस फिर क्या था। बात की बात में अखाड़ा बनकर तयार होगया। हाथ भर ऊँची मिट्टी सौ वर्ग फुट के घेरे में डालीगई। चारों ओर कदली-खम्भों से अच्छी तरह सजा दिया गया। बन्दरवारें बाँध दी गयीं। स्थान स्थान पर खप्परों पर आग रख कर धूप की धूनी दे दी गयी। सुनहली और रुपहली पत्तियों की झालरें चारों ओर लटका दी गयीं। अखाड़ा ख़ूब अच्छी तरह सजा दिया गया। उस दिन रात को बहुतेरों को नींद नहीं आई। जो किसी प्रकार सोये भी, वे लगातार सुख-स्वप्न देखते रहे। दूसरे दिन तीन बजते बजते लोगोंने अपने घर के कामों से जल्दी से निपट कर अखाड़ा घेर लिया। दीनानाथ और सखाराम एक ओर डट कर बैठ गये। उनके हित मित्र भी उचित आसन पर आसीन हुये। स्त्रियों के बैठने का अलग प्रबंध था। रुपिया ऊपर छत के बाहरी दालान में जङ्गले के पास बैठकर वहां का सारा दृश्य देख रही थी।

जोड़ें छूटने लगीं। पहिले दो चार छोटी मोटी कुश्तियां हुईं। बाद में दो भारी पहलवान आये। उन दोनों में बहुत देर तक दांव-पेंच चलते रहे। कभी एक दूसरे को दबा लेता था

और कभी दूसरा उसकी पकड़ से निकल कर पहिले को धर दबाता था। दोनों ही कुशल थे। कोई दर्शक कहता था, यह जीतेगा। कोई कहता था, नहीं, वह बाज़ी मार लेगा। दर्शकों के मन का भाव क्षण प्रति क्षण बदला करता। देखते ही देखते लांबे पहलवान ने मोटे पहलवान को बैठक लगाकर गिराने का प्रयत्न किया। वह बहुत ही सम्हला; नहीं तो फिर उसका उठना कदाचित कठिन हो जाता। मुंह के बल गिरते गिरते चालाकी से उसने करवट बदल कर अपने को बचाया। अबकी वह बड़े क्रोध से लांबे पहलवान की ओर झपटा। धोखा देकर उसे ऐसा पछाड़ा कि वह पांच हाथ दूर जाकर चारों ख़ाने चित्त गिरा। मोटे-नाटे काले रङ्ग के पहलवान की जीत हुई। तालियां बजने लगीं।

तब तो उसे ख़ूब जोश आया। अखाड़े में इधर उधर दौड़ने लगा। बार बार ललकार कर कहने लगा, यदि किसी में हिम्मत हो, तो वह आकर मुझसे ज़ोर करे।" कोई नहीं आया। बहुत देर हो गई। फिर भी वह पहलवान वहां से नहीं हटा। कहता ही गया, "यदि किसी को अपनी ताक़त का घमंड हो, तो मुझसे अपना हौसला निकाल ले।" मस्त सांड़ की तरह वह यहां वहां झूमने लगा। अपने ही मुंह से अनेकों प्रकार से अपनी बड़ाई करने लगा। यह बात बहुतेरों को बुरी लगी। सन्ध्या होती जाती थी। इसके कारण से सब मज़ा किरकिरा होता जा रहा था। उसका यह दर्प किसी से भी नहीं देखा

जाता था। पर क्या करते ? किसी को उसके पास जाने का साहस नहीं होता था। अधिकांश लोग तो छँटने लगे; अधिकांश उस पर दांत पीस पीस कर रह गये। अन्त में लोगों ने समझा कि बस, अब दङ्गल होगया और वे अपने अपने घर की ओर जाने लगे। अचानक इसी समय एक घटना घटी। भीड़ पीछे को मुड़ पड़ी। एक बार फिर जहां जो था वहीं आकर खड़ा हो गया। सब ने स्पष्ट तौर पर सुना। एक ओर से महीन मीठी आवाज़ आ रही थी "क्या कोई ऐसा वीर पुरुष नहीं है, जो इस का सामना कर सके। यदि कोई इसका गर्व खर्व कर सकेगा, तो मैं उसे अपनी ओर से पांच सौ रुपये पारितोषिक दूंगी। चारों ओर सन्नाटा छा गया। यदि सूई भी गिरे, तो उसका शब्द जान पड़े। सांस रोके हुये सब जहां के तहां खड़े रहे। वे खड़े रहे पाषाण की मूर्त्ति की भांति। लोभ भारी था। पर प्रत्येक ने समझा, मेरी जान भारू थोड़े ही है, जो मैं इससे भिड़ूं। एका एक लोगों ने एक और विचित्र बात देखी। आश्चर्य से टकटकी बँध गयी। एक थोड़ी उम्र का सुन्दर युवा अखाड़े में उतर कर उस पहलवान से हाथ मिला रहा है। सब लोग एक साथ चिल्ला उठे, छोटे भैय्या! छोटे भैय्या!" दीनानाथ ने सखाराम का हाथ पकड़ना चाहा था, पर वह छटक कर अखाड़े के भीतर चला गया। सब लोग फिर अवाक् हो गये। इतने बड़े मिहनती पहलवान के गठीले डील का एक साधारण सुकुमार शरीर क्या कर सकेगा ?

रुपिया के शब्दों को सुनकर सखाराम अपने को नहीं रोक सका। उसे मानों किसी ने आगे को ढकेल दिया। वस्त्र फेंक कर वह चट अखाड़े में घुस गया। यह कार्य इतनी जल्दी हुआ कि लोगों की दृष्टि उस पर शीघ्र न पड़ सकी। सखाराम को पहिचानने पर वे कभी उसे ऐसे अवसर पर अखाड़े के भीतर पैर न रखने देते। बात की बात में उस कलूटे ने सखाराम की हलकी देह उठाकर काँधे पर रख लिया। उसके काले विशाल शरीर पर सखाराम का गोरा अंग ऐसा जान पड़ने लगा, मानों किसी काले पहाड़ पर अस्त होते हुये सुर्य्य की अन्तिम किरणें पड़ रही हों। वह दैत्य सखाराम को लेकर 'धप् धप्' करता हुआ, "कहां पटकूं, कहां पटकूं" कहकर चारों ओर ज़ोर से चक्कर लगाने लगा। सखाराम ने एकबार चारों ओर दृष्टि फेरी। गांव के प्यारे लोगों के मुख पर चिन्ता की रेखायें थीं। वे मुर्दों से भी गये बीते हो रहे थे। आंखें बाहर को निकली पड़ती थीं। भाई की न जानें कैसी दशा दिखायी दे। क्षण ही भर में कुछ से कुछ हो गया था। मुख विवर्ण और देह प्राण शून्य हो गए थे। उनकी अवस्था अकथनीय थी। निश्चेष्ट अवस्था में दोनों हाथों से आखें मूंदे इस प्रकार खड़े थे, जैसे जड़ से उखड़ा हुआ कोई वृक्ष हो।

रुपिया का निराला रूप था। वह स्थिर बैठी हुई अखाड़े की ओर देख रही थी। उसकी बड़ी बड़ी उज्ज्वल आंखों से एक विचित्र प्रकार की ज्योति निकल रही थी। सखाराम ने स्पष्ट-

तया देखा । उसने देखा कि वह ज्योति मानों किसी प्रचण्ड प्रकाशमान ब्रह्म से निकल कर सीधे उन दोनों लड़ने वालों पर पड़ रही है और दोनों ही को अशक्त बना रही है । सखाराम ने अपने और अपने साथी की निर्बलता का प्रमाण शीघ्र ही पा लिया । उसकी आंख मुंदी जाती थीं । चेष्टा करने पर भी वह उन्हें खोले नहीं रख सकता था । उसके साथी के घुटने मुड़े जाते थे । वह पृथ्वी पर गिरा पड़ता था ।

ईश्वर जाने क्या हो गया । किसी के कुछ समझ ही में नहीं आया । एक क्षण पहिले जो सखाराम मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ दिखायी देता था, उसे अब सब ने विस्मय से विस्फरित नेत्रों से क्या देखा कि वह कृष्ण की नाईं पूतना की छाती पर चढ़ा हुआ खेल रहा है । हर्ष से दौड़ कर सहस्रों हाथों ने उसे ऊपर उठा लिया । बारी बारी से सब उसे हृदय से लगाने लगे । दीनानाथ तो अपने प्राण-तुल्य भाई को पा कर घंटों उसे लिपटाये बैठे रहे । चारों ओर से रुपयों की वर्षा होने लगी । लोगों ने मुग्ध हो देखा कि एक देवी ऊपर से थैली में हाथ डाल डाल कर मुट्ठी भर भर के रुपयों को चारों ओर दूर दूर तक फेंक रही है । दीनानाथ ने प्रसन्न हो कर अपने गले से मोतियों की माला निकाल सखाराम के गले में डाल दी ।
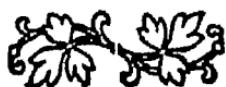
चौदहवाँ परिच्छेद।

पोल खुल गया।
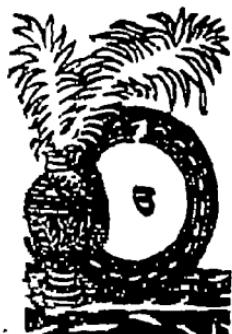
उस दिन बहुत रात तक बातें होती रहीं। बहुत से हित-मित्र दीनानाथ के पास बैठ कर उसी दंगल की चर्चा करते रहे। सभी सखाराम की बड़ाई कर रहे थे। उसने उस दिन ऐसा काम ही किया था। उस घटना ने सभी दर्शकों के हृदय पर प्रभाव डाला था। जिन लोगों ने वह देखा नहीं था, केवल सुना ही भर था, वे भी उस आश्चर्य घटना को बिना कई बार दुहराये नहीं रह सकते थे। जो अपने को दूसरों की अपेक्षा ज़रा अधिक बुद्धिमान लगाते थे, वे इसको थोड़ा नमक मिर्च लगा कर कहते थे। कोई कोई इसे दैवी-घटना कह कर अपने विचार प्रगट करते थे। कहते थे, उस दुष्ट का घमंड चूर करने के लिये किसी देवता का अंश सखाराम में आ गया था। इसी से वह अचानक उत्तेजित होकर अखाड़े में कूद पड़ा था। बिना किसी दैवी-शक्ति के भला कोई अपने से कई गुनी जोड़ को इस प्रकार मात दे सकता है? दीनानाथ एक ओर चुपचाप बैठ कर सब की बातें सुन रहे थे। उनकी सुनने के साथ ही अपनी भी कुछ सोच रहे थे। यह दंगल करके मैंने अच्छा नहीं किया, यह विचार

बार बार उनके मन में आता था। उस जन्म के किसी बड़े पुण्य के प्रताप से आज यह भारी अनर्थ होते होते बच गया। इस समय भी उनका मन भीतर ही भीतर घबड़ा रहा था। उन्हें ऐसा जान पड़ता था, जैसे अभी कुछ और होना बाक़ी है। नागपञ्चमी के उत्सव के उपलक्ष में उनका कुछ न कुछ बिगाड़ होता ही है। यह उनका प्रत्येक वर्ष का अनुभव था। यही कारण था कि इस बार भी उनका हृदय उथल पुथल करने लगा। एक बला यदि किसी प्रकार सिर से टल गई है, तो दूसरी अवश्य आवेगी, ऐसा उनके मन में हो रहा था। सिर झुकाये हुये वे एक ओर बैठे थे। लोगों का दीनानाथ की ओर इतना अधिक ध्यान नहीं था कि वे उनके मन का दुःख उनके मुख पर झलकते हुये देख सकते। आनन्द में मस्त वे अपनी लच्छेदार बातों मे लीन थे।

लगभग दस बजे यह सभा भंग हुई। इस आनन्द के समय भी दीनानाथ का हृदय भविष्य की किसी भयङ्कर घटना की आशङ्का से अशान्त था। धीरे से उठकर वे रसोई घर में गये। थोड़ा बहुत खा, पानी पिया। हाथ धोकर कपड़े पहिने और सीधे शयनागार की ओर चले। ऐसी कुछ बात ही है कि कुछ भारी सुख अथवा दुःख की घटना होने के पहिले मन आनन्दित अथवा उदास हो आया करता हैं। थोड़ी दूर जाकर दीनानाथ ठिठक गये। देखा कि रुपिया थाली में आरती सजा कर एक ओर को जा रही है। वे वहीं चुपचाप खड़े होकर देखते रहे। रुपिया

सखाराम के कमरे की ओर बढ़ी। पास आने पर उसने जाना कि दरवाज़ा खुला हुआ है। वह भीतर चली गई। दीनानाथ भी धीरे धीरे वहीं आकर खिड़की के पास खड़े हो भीतर का दृश्य देखने लगे।

सखाराम पलङ्ग पर पट लेटा हुआ था। छाती के तले एक तकिया रख, उस पर अपने हाथ की दोनों कुहनियों का ज़ोर दिये हुये, माथा ऊँचा कर लैम्प की ओर देख रहा था। दो पतिंगे ज्योति की ओर लपके। कांच की चिमनी की ठोकर खा गिर पड़े। कुछ देर तक वे उड़ जाने के लिये फड़फड़ाते रहे। इसी समय सखाराम को कुछ आहट जान पड़ी। सिर घुमा कर देखा, तो देखता ही रह गया। रुपिया अपने विचित्र वेष-विन्यास से थाली में आरती सजाकर मन्द मन्द मुस्कुराती हुई आ रही थी।

सखाराम उठ बैठा। वह कुछ अप्रतिभ हो और कुछ हँसी से बोला, "आज यह कैसा स्वांग रचा है? मैं आपको हर समय बहुरुपियों सरीखा रङ्ग बदलते देखता हूं।"

रुपिया—"बहुरुपियों सरीखा?"

सखाराम—"वरन उनसे भी बढ़कर। वे तो अपने मुख पर रोग़न लगा कर और कई एक वस्तुओं की सहायता से अपना कृत्रिम वेष बनाते हैं, जो ध्यान पूर्वक देखने से मालूम भी हो जा सकता है; किन्तु आप अपना रूप बड़ी उत्तमता से ऐसे

अच्छे प्रकार बदलती हो कि फिर आप को कोई पहिचान ही नहीं सकता । बहुधा आप मुझे अपनी मोहिनी मूर्ति दिखाकर रिझा चुकी हो । आज सन्ध्या को आपने दो बार अपने रूप बदले थे । वे दोनों रूप दो देवियों के थे । एक से तो आपने महाशक्ति शालिनी बनकर मुझे विजयी बनाया था । और दूसरी से आप ने लक्ष्मी रूप हो सब को अपनी उदारता का परिचय दिया था । इस समय आप जादूगरिनी बन मुझ पर अपना प्रभाव डालने आयी हैं ।"

रुपिया की मधुर हास्य-ध्वनि कमरे में व्याप्त हो गयी । उसने कहा, और आप ? आप क्या करते हैं ? बातें करने में तो आप बड़े पक्के हैं ।"

सखाराम—" मैं ! मैं कुछ नहीं करता । सब श्रेय आप ही पर है । जैसे सूर्य के प्रकाश से चन्द्रमा प्रकाशमान रहता है, उसी प्रकार आपकी इच्छा द्वारा प्रेरित होने पर मैं भी कुछ करता दिखायी देता हूं, आपकी शक्ति से ही मैं शक्तिमान हूं ।"

रुपिया—"बड़े लोग अपना बड़प्पन अपने मुख से नहीं कहते । दो शैल-खण्डों के मध्य में बहती हुई नदी अपनी गहराई के स्थान पर शान्त रहा करती है ।"

सखाराम-"यही सही । पर यह जो मैं बड़ा हूं, वह आप ही की कृपा से ।"

रुपिया-"वादा विवाद में आप से कोई नहीं जीत सकता ।"

सखाराम-"यह भी आप की कृपा है ।"

रुपिया ने हँसते हुये कहा, "अच्छा, मैं हार गयी। कुछ भी हो, पर आप ने आज एक बड़े महत्व का कार्य किया है। इसीसे मैं आपकी पूजा कर आपकी प्रतिष्ठा करने आई हूं।"

सखाराम-"जो कुछ आपको अच्छा लगे, कीजिये। मैं आप के किसी कार्य में बाधा डालना नहीं चाहता।"

सखाराम पत्थर की मूर्त्ति की भांति बैठा रहा। रुपिया आरती करने लगी। कैसा दृश्य था। उसकी शोभा का वर्णन करना लेखनी की शक्ति से परे है। उधर दीनानाथ प्रेम की युगल जोड़ी का यह खेलवाड़ देख भौंचक से रह गये। रुपिया ने उनके साथ कभी इस प्रकार का कौतुक नहीं किया था। हृदय में भाई के प्रति कुछ कुछ ईर्षा उत्पन्न हुई।

सखाराम ने कहा, "हो गया या अभी कुछ और करना बाक़ी है?"

रुपिया ने अपनी मनोहर दंत-पंक्तियां दिखाकर कहा, "अभी प्रणाम करना अविशेष है।"

रुपिया ने थाली टेबिल पर रख दी। न जाने क्या हुआ। प्रणाम करना भूल कर वह सखाराम पर गिर पड़ी। सखाराम ने उसे रोकने की इच्छा से अपनी दोनों भुजाओं को आगे फैला दिया। दोनों ने एक दूसरे के अपनी भुजाओं से आवेष्ठित कर लिया। प्रेम यथार्थ में पवित्र होता है। उसमें पाप की छाया तक नहीं होती। प्रेम में वह आकर्षण शक्ति है, जिससे एक जीवात्मा

दूसरी के निकट जाने का उद्योग करता है, उसकी ओर झुकता है और उसमें मिल जाने की उत्कट इच्छा प्रगट करता है। सखाराम और रुपिया दोनों परस्पर एक दूसरे पर प्रेम करते हैं प्रत्येक के हृदय में यह अभिलाषा है कि वह दूसरे के हृदय में प्रवेश कर इसमें लीन हो जावे। इसी से वे अपने को अपने प्रेम पात्र से जितना निकट हो सके रखने की आकांक्षा करते हैं। इस समय वे उसी आकर्पण से चिपट गये। भरजोर दोनों ने एक दूसरे को दबाया। अपने को दूसरे में मिला देने का प्रयत्न किया।

दीनानाथ ने सब देखा। किन्तु देखकर भी उन्होंने भली प्रकार नहीं देखा। जैसे साधारण लोग देखते हैं, वैसे ही देखा। उनके पास अन्तर्भेदिनी दृष्टि नहीं थी। साधारण दृष्टि से देखकर उन्होंने समझा कि रुपिया पापनी है। उसके निर्दोष अन्तःकरण का पता वे नहीं पा सके। भूल से उसे दुश्चरिता समझ क्रोध में आग बबूला होगये। केदली-खंभ की नाईं कांपते हुए पागल की तरह भीतर घुस पड़े। रोप से अन्धे हो गये। सारा ज्ञान लोप होगया। अपनी स्त्री को स्त्री नहीं समझा। भाई को भूल गये। बेंत के मानिन्द अपना समस्त शरीर थरथराते हुए दोनों का तिरस्कार कर मुख से अस्पष्ट निकले हुए शब्दों में बोले, "हे ईश्वर! यह विश्वासघात! मेरे प्यारे सचरित्र भाई का यह निन्दित कार्य मेरी बुद्धिमती भार्य्या का यह असत् कर्म? आह! परमात्मा!

तू ने मुझे यह दृश्य देखने के पूर्व ही इस पृथ्वी पर से क्यों न उठा लिया है !! ·

अचानक वज्रपात् होते देखने प्रेमी-द्वय सहम कर अलग होगये। उनका हृदय धड़कने लगा। रुपिया ग़रीब के घर में पैदा हुई थी सही, पर वह बड़े लाड़ प्यार के साथ पली थी। किसी ने उसकी ओर आंख उठा कर भी नहीं ताका था। उसके समस्त अपराध क्षमा थे। इसके अतिरिक्त वह स्वतन्त्र थी। सब काम अपने मन से करती थी। कोई उसे अपने वश में कर अपनी अनुगामिनी नहीं बना सका था। आज अपने ऊपर अपने पति का कोप देख उसके हृदय पर एक कड़ा धक्का पहुंचा। उनकी रौद्र मूर्त्ति ने उसके मर्म स्थान पर ताड़ना की। यह हुआ सो हुआ। पर जो वह अपने पति के निकट अ-विश्वासिनी समझी गयी, उसकी भीषण हृदय-वेदना वह नहीं सह सकी। इस असीम यन्त्रणा से उसे अपार कष्ट हुआ। मूर्छित होकर वह एक ओर को लुढ़क गयी। और सखाराम का क्या हुआ ? अपने भाई पर अपरिमित प्रेम, भक्ति और श्रद्धा रखने वाले अपने भाई द्वारा अथाह प्रेम एवं कृपा प्राप्त करने वाले-सखाराम के हृदय की गति उसी भाई द्वारा लाञ्छित होने पर क्या हुई, वे वही जानता था। दूसरा कोई उसके हृदय की मर्मान्तिक पीड़ा का अनुभव नहीं कर सकता था। क्लेश से कातर सखाराम करुण नेत्रों से दीनानाथ की ओर देखता हुआ उनके पैरों पर लोट गया। दीनानाथ को

दया नहीं आयी। उन्होंने दोनों को घृणा की दृष्टि से देखा। सखाराम को-अपने प्यारे और फिर दुलारे की छाती पर पत्थर रख कर ठुकरा दिया। जो सखाराम दीनानाथ के नेत्रों की पुतली था, वही आज उनके पैरों के तले भी शरण नहीं पा रहा है। वह उसका दुर्भाग्य था—समय का फेर था। नहीं तो ऐसा उलट फेर कहीं नहीं देखा जाता। जिन दीनानाथ ने आज ही घंटों पहिले सखाराम को कलेजे से चिपका कर घंटों प्यार किया था और अपनी हार्दिक प्रसन्नता से उसे मोतियों की माला उपहार में दी थी, उन्होंने अब उसे अपने पैरों के पास भी रखना उचित नहीं समझा—यह काल के भयानक चक्र की विषम गति नहीं, तो क्या? दीनानाथ के ठुकराने से सखाराम की देह पर चोट न लगकर हृदय पर लगी जिससे उसका हृदय विदीर्ण होगया और उसने भी अपनी चेतना-शक्ति खो दी।

पन्द्रहवां परिच्छेद।

गृह त्याग।

उद्यान के आम्र-वृक्ष पर बैठी हुई कोयल की कूक से सखाराम की मूर्छा टूटी। शान्य-शून्य ही अपने हत प्राय नेत्रों से वह कुछ देर तक छत की कड़ियों की ओर निहारता रहा। उस क्षण वह भूला हुआ था कि मैं कौन हूं? कहां पर हूं? किस अवस्था में हूं और क्या कर रहा हूं? केवल वही कूक कानों में घुस 'सांय, सांय' कर रही थी। धीरे धीरे धारणा शक्ति उसका साथ देने लगी। वह अपने को पहिचानने लगा। कुछ देर में समस्त घटनाएं उसके मस्तिष्क में चक्कर लगानें लगीं। तब उसे जान पड़ा कि इस कूक ने जले पर नमक का काम किया है। यदि वह सदैव के लिये उसी प्रकार सोता ही रहता, यदि उसकी वह सुखदायक मूर्छा कभी न टूटती तो क्या ही अच्छा होता। संसार के कष्टों से मुक्ति तो मिल जाती।

बड़े भाई के पदाघात से अज्ञान होजाने पर सखाराम अपना सारा कष्ट भूल गया था। स्वप्न- प्रदेश में विचर कर नाना भांति के सुख दृश्य देख रहा था। जागने पर फिर वही बात

वही यातना । पास ही रुपिया पड़ी हुई थी । और कोई उस समय कमरे में नहीं था । दीनानाथ वहां से कब बाहर चले गये थे वह नहीं जान सका था । कई प्रकार की भावनाएं उसके मन में उठने लगीं । चिंता से उसके हृदय का चिता की नांई दहन होने लगा । उसी चंचल रुपिया को अपने पास निश्चेष्ट अवस्था में, डाल से अलग कर दिये गये मुर्झाये हुये गुलाब के फूल की सदृश पड़े हुये देख कर सखाराम के हृदय में शोक का समुद्र उमड़ आया । मेरे ही कारण इसकी यह गति हुई है । मुझे ही प्यार कर यह गढ़े में गिरी है । यदि मेरा और इसका संयोग इस जीवन-पथ पर न होता तो वह बड़े आनन्द से अपनी यात्रा-पूर्त्ति के निमित्त भ्रमण करती हुई सुख-मार्ग की ओर चली जाती । क्या परमात्मा ने मुझे इस संसार में दूसरों के सुख का मार्गावरोध करने ही के लिये भेजा है ? मैं कैसा हीन हूं ? दूसरों की भलाई करना तो दूर रहा, उनके मार्ग में कांटा बन रहा हूं । कई बार कष्ट से व्याकुल होकर उसने अपनी छाती पर ज़ोर ज़ोर से मुक्का मारा । पर इससे क्या हो सकता था ? मानसिक व्यथा से उसकी देह पेंठने लगी । मुख बार बार विकृत होजाने लगा ।

फिर उसका ध्यान दूसरी ओर गया । पूज्य भाई द्वारा इस प्रकार तिरस्कृत होने पर अब क्या करना चाहिये ? भाई मुझे पापी समझते हैं। उनके चित्त से मैं गिर गया हूं । ऐसी अवस्था में मैं अपना मुख उन्हें नहीं दिखा सकता । तब क्या करूं ? मर

जाऊं ? हां एक बात है। मैं निर्दोष हूं। रुपिया भी निर्दोष है। यदि कभी ईश्वर की कृपा से मेरी और इसकी निर्दोषता भाई पर प्रगट हुई, तो वे मुझे प्यार करने को आकुल होंगे रुपिया को इस प्रकार कष्ट पहुंचाने के कारण उनके हृदय में घोर सन्ताप होगा। यह सुख मैं देखना चाहता हूं। क्या वह दिन कभी आवेगा ? कदाचित आजाय। मुझे अपनी जान नहीं देनी चाहिये। अभी मैं जाता हूं पर फिर रुपिया का क्या होगा ? होगा, जो कुछ होना होगा। इसके लिये मैं क्या कर सकता हूं ? यहां रहकर भी तो मै उसका कुछ भला नहीं कर सकता। कहीं अन्यत्र जाकर अपने दुःख के दिन पूरे करूंगा। सुख के दिन आने पर........। सखाराम कांप उठा। इस थोड़ी सी आशा का विचार ध्यान में आते ही उसके शरीर में प्रसन्नता से रोमाञ्च हो आया। भावी सुख की कल्पना से उसकी आँखें चमकने लगी लगीं। किन्तु यह कल्पना का आनन्द क्षणिक था। फिर वही चिन्ता हृदय में लहर मारने लगी। अंधेरे में अचानक एक क्षीण प्रकाश के दृष्टिगोचर होने पर और तत्क्षण उसके लोप होजाने पर अंधेरा और भी घना जान पड़ने लगता है। सखाराम के हृदय में भी घोर अन्धकार ने अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया। जान पड़ने लगा जैसे उसका आधिपत्य वहां से कभी हटेगा ही नहीं।

आख़िर वह उस अन्धकार में कब तक पड़ा रहता। टटोलते टटोलते उठ खड़ा हुआ। दिशा का ज्ञान न रहने पर

सोलहवां परिच्छेद।

नई विपत्ति।

ड़ा झिझक कर खड़ा होगया। सड़ाक सड़ाक लगाकर तांगे वाले रहमान ने उसे आगे बढ़ाना चाहा। पर वह टस से मस न हुआ। ऐसा अड़ा, जैसे किसी ने गोंद लगाकर उसे धरती से चिपका दिया हो। तब तो झल्ला कर रहमान चिल्लाने लगा "चल वे बेईमान नमकहराम। खाने के लिये हो तो, दिन-रात मुह चलाता रहे। चार क़दम चलते नहीं बनता। मेहनत करने के लिये क़सम खा ली है क्या? जांगर चोर कहीं का? काट डालूंगा।" इसका उत्तर घोड़े ने गर्दन हिला हिनहिना कर दिया। आगे को नहीं झुका इससे भी उसके मालिक को संतोष नहीं हुआ। वह ताबड़तोड़ कांख कांख कर उसे पीटने लगा।

तांगे पर बैठी हुई बालिका तारा ने अपने वृद्ध पिता हृदय-नाथ का धीरे से हाथ दबा कर कहा, बाबू जी वह देखिये कोई सफ़ेद चीज़ सामने दिकायी देती है। जान पड़ता है, उसी के कारण घोड़ा आगे नही बढ़ता। "हृदयनाथ ने उधर देखा। कहा "हां, है तो कुछ।" फिर तांगे वाले से ज़ोर से कहा,

"ठहरो जी। घोड़े को इस तरह न मारो। उसे खड़ा रहने दो। आगे मत बढ़ाओ। देखो! वह सामने क्या है?"

तांगे वाले ने भी उस ओर दृष्टि डाली। हड़बड़ा कर वह नीचे उतर पड़ा। रहमान साहसी था। जल्दी जल्दी पग बढ़ाता हुआ पास पहुंच कर देखा, तो एक आदमी है। अब तो घोड़े को छोड़ कर वह उसी पर बिगड़ पड़ा, "शराबी कहीं का" मतवाला होकर बीच सड़क पर पड़ा हुआ है। अभी चक्का गर्दन पर से निकल जाता, तो आप तो मरता ही, साथ में मुझे भी अपने साथ जहन्नुम में घसीट ले जाता। खुदा ने ख़ैर की; नहीं तो इसने तो तबाह ही कर दिया था। रहमान कुछ बेरहम था। अपनी राह साफ़ करने के लिये उसने मतवाले को एक ओर कर देने के इरादे से उसकी टांग पकड़ ली और घसीटना चाहा। हृदयनाथ सहृदय थे। "हैं! हैं!! हैं" करते तांगे से नीचे उतर पड़े और उसके पास जाकर उसे ऐसा करने से रोका। रहमान ठहर गया। पैर छोड़ कर एक ओर को खड़ा होगया। बिना किसी प्रकार का विचार किये हुए ही दयावान हृदयनाथ उसे होश में लाने की चेष्टा करने लगे। कोई कोई पुरुष स्वभावतः ही दयालु होते हैं। दूसरे का उपकार करने में ज़रा भी नहीं हिचकिचाते। वृद्ध ने धीरे से उसका सिर उठाकर अपनी गोद में रख लिया। दयावान पिता की दया वान पुत्री पास आकर अपने पिता की सहायता करने लगी। अपनी आंचल से उसने उस के मुख की धूल पोंछ दी। रहमान को उनका

यह कार्य अच्छा नहीं लगा । फिर भी उसे इसके विरुद्ध कुछ बोलने की हिम्मत नहीं हुई । जल्लाद के कठोर हृदय में भी कुछ न कुछ दया रहती ही है । कम से कम उसकी आत्मा में इतनी शक्ति अवश्य रहती है कि वह उसका मन समय पर इतना तो पिघला सकती है कि वह एक को दूसरे पर दया करते देख उसे एका एकी रोक नहीं सकता इससे उसकी चाहे कुछ थोड़ी सी हानि ही क्यों न होजाय । रहमान आज रात भर तांगा हांकता रहा था । उसे जल्दी घर जाने की पड़ी थी । फिर भी वह उनके उस कार्य में बाधा नहीं दे सका । कुछ भी हो, रहमान मनुष्य था । यदि किसी की आत्मा बिलकुल ही मर जाय तो उसे पशु ही समझना चाहिये ।

ऊपर का विशद प्रकाश चारों ओर तेज़ी के साथ फैल रहा था । थोड़ी ही देर में अब वस्तुओं का आकार स्पष्ट सब को दिखाई पड़ने लगा । प्रातः काल की शीतल वायु के कोमल स्पर्श से सखाराम ने अपनी बड़ी बड़ी आँखें खोल दीं । तारा और हृदयनाथ दोनों ने उसके मुख की ओर देखा । गोरा सा कोमल कमल की नाईं मुख था । सवेरे की ताज़ी वायु ने उस पर कुछ ताज़ापन ला दिया था जिससे उसके ललाट पर अङ्कित शोक चिह्न कुछ कुछ छिप गये थे । सुबह की सुफ़ेदी के साथ ही साथ उसके मुख से एक शुभ्र ज्योत्सना निकल कर चारों ओर छिटक रही थी । और देखने वालों के मन को मोहित कर रही थी । सुन्दरता किसका हृदय आकर्षित नहीं कर लेती । मनोरम

श्वेत गोलकों में काली काली भ्रमरी की नांई चमकदार पुतलियां देखकर रहमान भी खिंच गया। यह बोल ही तो उठा ओह कैसा खूबसूरत जवान है।"

सखाराम ने आश्चर्य चकित नेत्रों से चतुर्दिक देखा। प्रथम ही उसकी दृष्टि अत्यन्त स्वरूपवती बालिका तारा पर पड़ी। उसे जान पड़ा, जैसे कोई देव कन्या उसका उद्धार करने के लिये पृथ्वी पर अवतारी हो। वह अनिमेल भाव से उस मधुर्य्यमयी प्रतिमा का बड़ी देर तक अवलोकन करता रहा। अंग-प्रत्यंग मानों सांचे में ढला हुआ हो। उस देव-कन्या की दुर्लभ मन-मोहिनी मूर्ति निहारने से उसके हृदयमें कुछ बल का सञ्चार हो आया। उसने मुख फेरा। हृदयनाथ की लगभग साठ वर्ष की अवस्था थी। बाल बहुत कुछ श्वेत होगये थे, पर चमड़े पर सिकुड़न नहीं थी। वे सामर्थ्यहीन नहीं जान पड़ते थे। मुखाकृति सुडौल थी। लंबे चौड़े डील में आतंक फूटा पड़ता था। एक ओर रहमान अपनी भयानक चाह युक्त आंखों से टकटकी लगाकर उसकी ओर देख रहा था।

बाल सुलभ सरलता से तारा ने अति आह्लाद से कहा, देखिये, इनकी आंखें खुलगयी हैं। ये अपनी ओर देखरहे हैं। हृदयनाथ की आंखों से आनन्द की ज्योति निकलने लगी। अपने मनोवेग को वे नहीं सम्हाल सके। सखाराम को हृदय से लगा लिया। परमात्मा ने सखाराम के रूप में न जाने कैसी विशेषता भर दी थी। जो कोई उसे देखता था, अपने को उसे

प्यार करने से नहीं रोक सकता था। स्नेह के भूखे सखाराम ने दीनानाथ के हृदय से विलग किये जाकर हृदयनाथ की गोद में कुछ आनन्द का अनुभव किया। दुःख पड़ने पर वह सदा दीनानाथ की छाती पर अपना सिर रखकर आंसू बहाया करता था, उसी स्वभाव से प्रेरित होकर वह इस समय भी हृदयनाथ को भूल से दीनानाथ समझ कर उनकी छाती से अपना मस्तक सटा बच्चों की नाईं फूट फूट कर रोने लगा। अभी तक उसकी आंखों के आंसू हृदय की ताप से भीतर ही भीतर सूख जाते थे, अब हृदयनाथ की सहानुभूति की शीतलता ने उन्हें अविरल मणि-मालाओं के रूप में वहिष्कृत करना प्रारम्भ कर दिया।

जैसे उनका कोई निकटस्थ आत्मीय हो, हृदयनाथ ने सखाराम को उठाकर उसे तांगे पर बैठा दिया, उससे कुछ पूछा भी नहीं। सखाराम ने भी इसके विरोध में अपनी जीभ नहीं हिलायी। अपने उपकारियों की सौजन्यता से वह मुग्ध हो रहा था। तारा सहित हृदयनाथ भी बैठे। इशारा पाते ही रहमान भी उस पर आ सवार हुआ। घोड़ा कान खड़े कर हवा से बातें करने लगा।

स्टेशन पर पहुंचाने पर मालूम हुआ कि लखनऊ जाने वाली गाड़ी खुलने ही वाली है। हृदयनाथ तारा और सखाराम को लिए हुए जल्दी जल्दी टिकट लेकर प्लेटफार्म पर पहुंचे। एक अच्छा सा डब्बा खोलकर उस में बैठ गए। उनके बैठते ही गाड़ी सीटी देकर चल दी। सखाराम को ऐसा कुछ ज्ञात हुआ;

जैसे उससे कोई कुछ कह रहा हो। बाहर की ओर दृष्टि फेरी. रहमान मुस्कुराता हुआ हाथ उठा कर सलाम कर रहा था।

क्रमशः गाड़ी ने अपनी अतुलनीय शक्ति दिखाना आरम्भ किया। कुछ ही देर में वह हरहरा कर बड़े वेग से दौड़ने लगी। थोड़ी थोड़ी देर में कानों के पर्दों को तोड़ने वाली चीक् सुनाई दे जाती थीं और उसके उपरान्त कुछ काल के लिये दसो दिशायें स्तब्ध हो जाती थीं। अनेकानेक नदी पहाड़ और जंगल पीछे छूटते चले जाते थे। तारा सखाराम के और पास सरक आयी और विविध प्रकार से उसके म्लान मुख पर प्रसन्नता की आभा लाने के निमित्त जी जान से जुट कर प्रयास करने लगी। सखाराम भी उसे निराश न करने की इच्छा से लगातार अपना मुख प्रफुल्ल बनाने की चेष्टा करता रहा। दोनों ही एक दूसरे का मन रखने का यत्न कर रहे थे। तारा बार बार कहती थी, "यह देखिये।...वह देखिये।...वह कैसा मनोहर है।" सखाराम हर बार उसकी इच्छा पूर्ण करता था। जो कुछ बालिका कहती थी, वह करता था। एक बार तारा ने अपना हाथ बाहर निकाल कर जंगल में एक मोर की ओर जो कि सुचारु रूप से अपने रंगीन पंखों को फैला कर आनन्द से नाच रहा था, सखाराम का मन फेरने के लिये अपनी तर्जनी सीधी की। अचानक मुट्ठी में का रुमाल तेज़ हवा लगाने के कारण फर्र से उड़ गया। तारा "अरे" कह कर नीचे उसकी ओर देखने लगी। सखाराम यह जानने के लिये कि क्या होगया,

उठ खड़ा हुआ। तारा के मुख की ओर देख कर उसने पूछा "क्या हुआ?" वह उसी ओर देखती हुई बोली, "रुमाल"। सखाराम दर्वाज़े के पास आ बाहर सिर निकाल, तारा की दृष्टि के साथ अपनी दृष्टि मिलाकर देखने लगा।

दुर्भाग्य अपने साथ अनेक आपदाओं को साथ लेकर आता है। अकेले नहीं आता। दर्वाज़ा बाहर की ओर न जाने कैसे खुल पड़ा। सखाराम ज़ोर से भनभनाकर जाती हुई ट्रेन के नीचे गिर गया। तमाम डब्बे भर में खलबली मच गई।
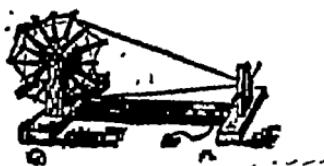
सत्रहवां परिच्छेद ।

सर्वनाश ।

सखाराम के धक्के से टेबिल पर रक्खा हुआ लैम्प नीचे गिर कर चूर चूर होगया। मिट्टी का तेल चारों ओर छिटक गया। एकबारगी ही आग भभक उठी। आग की लपक बड़े ज़ोर से से ऊंचे उठने लगी। कुछ तेल रुपिया के बालों पर और कुछ उसके मुख पर पड़ा। उसका सिर अचानक मशाल की तरह जलने लगा। वह घबड़ा कर उठ खड़ी हुई। उसकी देह पर के सारे कपड़ों में आग लग गयी। एकाएक अपनी यह भयानक स्थिति देख कर रुपिया पागल हो उठी। बड़ी ज़ोर से वह कमरे के भीतर ही भीतर यहां वहां दौड़ने लगी। जीते जी उसकी कोमल देह जलकर भस्म हो जाने लगी। आपार कष्ट से व्याकुल हो वह गला फाड़कर "जलो, जलो" कह कर चिल्लाने लगी, बचाओ, बचाओ"।

नौकर-चाकर और अड़ोसी पड़ोसी सब घटना-स्थल की ओर दौड़ पड़े। बड़े विस्मय से देखा कि दीनानाथ के घर में आग लगी हुई है। हु हु कर के उनका मकान जला जा रहा है। अग्नि की लपटें विकट रूप में चारों ओर से अपना विकराल मुंह फलाये हुये बड़ी तेज़ी के साथ दौड़ रही हैं। जो वस्तु सन्मुख

पाती है, झड़प कर आती है । बड़ा डरावना दृश्य था । सबके हृदय में भय समा गया कुछ देर के लिये सब कोई चित्र लिखे से खड़े रह गये ।

धीरे धीरे वे फिर अपने आपे में आये । किसी एक के सुझाने से उन्हें अपने कर्त्तव्य का ज्ञान हुआ । यहां वहां दौड़ धूप करने लगे । कोई घड़ा लेने दौड़ा, कोई रस्सी लेने भगा और कोई पानी खींचने में जुट गया । किन्तु अग्नि लोगों की अपेक्षा अपना कार्य कहीं अधिक शीघ्रता के साथ कर रही थी जान पड़ता था, थोड़ी ही देर में सब स्वाहा हो जायगा । किसी के किसे कुछ न हो सकेगा ।

अग्नि की भी भीषणता बढ़ती ही गयी । लोगों के अविरत परिश्रम के विरुद्ध वह और भी ज़ोर से भड़कती गयी । जब कि लोग निराशा के कारण थकित से हो रहे थे उन्हों ने रुपिया की चिल्लाहट का अस्पष्ट शब्द सुना, जली, जली, यह करुणा क्रन्दन सब स्थानो में फैल गया । सब लोगों ने उस आर्त्त-स्वर को सुना । वे और भी भयभीत हो उठे । डर के कारण जितने प्राणी वहां पर थे सब कांपने लगे लोग एक दूसरे के मुख को देखने लगे । मानों वे जिज्ञासा कर रहे थे कि क्या ऐसा कोई साहसी और वीर पुरुष है, जो इस विकट अग्नि शाला में अपने जीवन के मोह का त्याग करते हुए प्रवेश कर रानी को बचाने का उद्योग कर सके । कोई आगे नहीं बढ़ा । जीवन बहुत ही प्यारा होता है । कोई विरला ही ऐसा होता है जो दूसरों के स्वार्थ के

निमित्त अपनी जान हथेली पर लिये रहता है। फिर बड़े बड़े धीर हृदयों को हिला देने वाला विलाप सुनाई दिया, अरे! कोई बचाओ। उस मृत्यु के मुख पर पड़ी हुई अबला की, जिसे सब लोग अपनी मालकिन कहा करते थे, जिसे आदर से रानी कह कर सम्बोधन करते थे और जिसके लिये समय पड़ने पर सब कुछ कर गुज़रने की डींगें मारा करते थे, इस समय उसकी सन्ताप से सनी हृदय-विदारक ध्वनि सुनकर कोई उसके पास फटकने की हिम्मत तक नहीं करता। जैसे किसी के हृदय में आत्मा का विकाश है ही नहीं। अमरनाथ लोगों की यह कायरता नहीं देख सके। उन आत्मस्वार्थियों के सन्मुख आत्म-त्याग का एक उच्चादर्श स्थापित करने के निमित्त उनका उच्च भावों से पूरित हृदय उन्हें उसकाने लगा। वे उत्तेजित हो उठे। अपनी देह पर के सारे कपड़े पानी से तर करके वे दनदनाते हुए अग्नि की सांपों की नाईं फुंकार मारती हुई लपटों के भीतर घुस गये। सब लोग अवाक् हो उनके इस निस्वार्थ एवं जीवन-मरण का प्रश्न उठाने वाले कृत्य को मुंह बाये देखते ही रह गये।

भीतर जाकर अमरनाथ ने जो देखा, वह कभी नहीं देखा था। उन्होंने कभी नहीं सोचा था कि भाग्यदोष से कोई व्यक्ति इस प्रकार का कठिन कष्ट भी पा सकता है। वे सहम गये। वही रूप की खान रुपिया जो आज ही सन्ध्या के समय इन्द्र की इन्द्राणी शची की भांति इन्द्रासन पर बैठ कर लोगों को

रुपये लुटा रही थी और जिसकी उदारता देखकर लोग दांतों तले अंगुली दबा रहे थे, इस समय अग्निमयी बनकर इधर उधर उद्वेग में दौड़ रही है। वर्णनातीत यातना से पानी से निकाल कर गर्म बालू पर रख दी गयी मछली की तरह तड़फड़ा रही है। अमरनाथ ने ऐसा दारुण दृश्य स्वप्न में भी नहीं देखा था। खोपड़ी पर जैसे किसी ने भड़ से लाठी मार दी। चक्कर खाकर पृथ्वी पर गिर पड़े। गिरते गिरते उन्होंने देखा कि उस अग्नि-शिखा में से एक विमल ज्योति निकल कर आकाश की ओर गयी और थोड़ी दूर जाकर उसी में लीन होगयी।

अठारहवां परिच्छेद ।

दीनानाथ का उन्माद ।

भाग्य लिखा को मेटन हारा' के चरितार्थ हो जाने के कारण दीनानाथ की होतव्यता के अनुसार मति पलट गयी। उनके व्यवहार में आकाश-पाताल का अन्तर पड़ गया। एक तुच्छ घटना को देखकर उनके मन का पहिले का भाव बिलकुल ही बदल गया। उनमें आश्चर्यकारक परिवर्त्तन होगया। अपने को न सम्हाल कर उन्होंने एक भयंकर कर्म कर डाला। वह कार्य करते समय ज़रा देर के लिये भी नहीं सोचा कि मैं एक बड़ा अन्याय कर रहा हूं। क्रोध के आवेश में आकर अपने को उत्तम प्रेम-वारि द्वारा सिञ्चित किये गये फूले हुए पौधों को हृदय-भूमि से उखाड़ कर अलग फेंके दे रहा हूं। उन्हें अपनी भूल जान ही नहीं पड़ी और न उन्हें उस पर कुछ पछतावा ही हुआ।

गोलाकार नेत्रों से वे बहुत देर तक, दूध पिला कर पाले गये सुन्दर होने पर भी, भयानक सर्पों को घूर कर देखते रहे। पश्चात् कमरे से बाहर ही अपना अशान्त हृदय लिये हुए एक ओर को जाने लगे। दीनानाथ ने अपने घरबार और अपनी अतुल सम्पत्ति की ओर एक बार आंख उठाकर भी नहीं देखा। वे

जिसे एक समय सब सुखों का मूल समझ रहे थे, उसकी इस प्रकार उपेक्षा की। उन्हें यह भी ध्यान में नहीं आया कि इस आपत्ति का सुख प्रदान करने वाला सामर्थ्य अब इस में है या कहीं जाकर विलीन होगया।

दीनानाथ अपने जीवन के इस संकटमय समय का विचार करते हुये जाने लगे। सदा सब के एक से दिन नहीं जाते। संसार परिवर्तन शील है। सब कुछ बदलने के साथ ही साथ मनुष्यों का भाग्य भी बदलता रहता है। कालचक्र द्वारा उलटे जाकर बड़े बड़े महाराजा राह के भिखारी हो जाते हैं। पेट भरने के लिये मुट्ठी भर अन्न मिलना कठिन हो जाता है। बड़े ऊंचे ऊंचे गगन-स्पर्शी पर्वत किसी दिन पृथ्वी के गर्भ में लीन हो जाते हैं। उसी परिवर्तन शीलता के कारण मेरी आज यह दशा होगई है। अपने साथ ही अपने पिता का मान-सम्भ्रम, उनका अपार वैभव और कुल की कीर्त्ति लेकर मैं निविड़ अन्धकारमय गहन गर्त्तावर्त में चला गया हूं। मेरे इस अधः पतन के कारण वे ही दोनों हैं। उन्ही के कारण मेरी यह शोचनीय अवस्था हो रही है। मैं उनके सुख की कितनी अधिक चिन्ता करता रहता था, पर उन्होंने यह पाप-कार्य करते समय मेरा तनिक भी ध्यान नहीं किया। ईश्वर की भी कैसी विचित्र लीला है? उसके सांसारिक न्याय में क्या यही लिखा है कि पाप-कर्त्ता को पाप का दण्ड न मिलकर किसी अन्य को ही मिले। जितना अनुताप उन्हें अपने कष्ट का ध्यान कर नहीं हुआ, उतना उन्हें अपने

दादा-बाबा का बड़प्पन मिट्टी में मिला जाता हुआ देखकर हुआ। अचानक उनके हृदय में एक विचार उत्पन्न हुआ। वह विचार बड़ों बड़ों के मन को दहला देने वाला था। दीनानाथ ने संकल्प किया। मैं अपने अपराधी को क्षमा कर सकता हूं, पर अपने कुल में कलंक लगाने वालों की दुष्टता कभी नहीं देख सकता। उन्हें उस समय ऐसा मालूम पड़ रहा था, मानों आकाश में बैठे हुये उनके पूर्वज उनका तिरस्कार कर रहे हैं। दीनानाथ! तू हमारे वंश में ऐसा नीच पैदा हुआ है कि तेरे समय में हमारी मर्य्यादा नष्ट-भ्रष्ट होगई। तू बड़ा कायर है। इतना हो जाने पर भी तू कानों में तेल डाले हुये है। क्या ऐसे बड़े अपराधियों का अपराध कभी क्षमा करने योग्य है? तू बड़ा हीन पुरुष है। दीनानाथ को यह सुनने की शक्ति नहीं थी उन्होंने अपना मुख फेरा और एक बार फिर घर की ओर लौट पड़े।

दीनानाथ अपने घर उस समय पहुंचे जब कि घर जलकर राख होचुका था। केवल कुछ लकड़ी के बड़े बड़े कुन्दे पड़े हुये सुलग रहे थे। पहिले तो वे बड़े चक्कर में पड़े। आंखें फाड़ फाड़ कर अपना मकान खोजने लगे। कहां गया? क्या हुआ? थोड़ी ही देर में उसे कौन उठा ले गया? गांव के लोगों का बड़ा भारी जमाव देखकर बड़ी देर में वे कहीं समझ सके कि उनका मकान जल गया है। चलो ठीक ही हुआ। पापियों को उनके पाप का दण्ड मिल गया। अवश्य ही वे दोनों इसके साथ जल

कर मर्य्यादाभूत होगये हैं। ईश्वर सचमुच न्याय ही करता है।

इन सब काण्डों को देख कर दीनानाथ का मस्तिष्क बिलकुल ही ख़राब होगया। उनकी नसों में ऐसा खिचाव-तनाव उत्पन्न हुआ कि वे फिर अपने कार्य करने के योग्य नहीं रह गई। दीनानाथ यथार्थ ही में पागल बन गये। उनकी विवेक शक्ति का सम्पूर्णतः नाश हो गया। अपनी हा दुर्गति देखकर वे बड़े ज़ोर से ठठाकर हंस पड़े। उस समय लोगों में बड़ी भड़-भड़ी मची हुई थी। अमरनाथ का लौट कर न आना देखकर उनके रहे सहे होश भी उड़ गये थे। किसी ने दीनानाथ को नहीं पहिचाना। सब की आंखों के सामने से होते हुये उन्होंने एक ओर को अपना रास्ता लिया।

उन्नीसवाँ परिच्छेद

फिर तारा और सखाराम ।

नियमानुसार प्रातःकाल के समय तारा एक कटोरी में मिठाई और गिलास में ठंडा जल लेकर सखाराम के कमरे में पहुंची। भीतर आते ही उसने धीरे से मुस्कुराते हुये कहा, आज तो आप अच्छे जान पड़ते हैं। संक्षेप से इसका उत्तर "हाँ" कहकर देते हुये वह संकोच के साथ खाने बैठ गया। अपरिचित व्यक्तियों द्वारा इतना सत्कार पाकर उसका मन भीतर ही भीतर न जाने कैसा करता था। किन्तु वह करता क्या ? विवश था। उनके प्रेम पूर्वक अनुरोध की उपेक्षा करने की उसमें शक्ति नहीं थी। नित्य प्रति वह उनके उपकारों के बोझ से अधिकाधिक दबता चला जाता था। फिर भी वह उससे निकलने का कोई प्रतिकार नहीं करता था और न करना चाहता था। अन्त में हुआ क्या ? उनके निष्कपट उपकारों और अपरिमित प्रेम ने उसे बिलकुल ही अपना लिया। सखाराम अपने को पूर्णतया उनके आधीन समझने लग गया। ऐसा समझने में वह अप्रसन्न नहीं था। जान बूझकर उसने अपने को उन्हें उनके उपकारों के बदले में दे दिया। इसके अतिरिक्ति

वह उनका प्रतिफल कैसे दे सकता था ? उसके पास था ही क्या ?

कितना भी हुआ, पर सखाराम का सङ्कोची स्वभाव उससे दूर नहीं गया। आज तक उसने हृदयनाथ से ढीठ होकर बातें नहीं कीं। तारा के प्रति उसका व्यवहार अति विनीत था। एक एक शब्द वह सावधानी से बोलता था कि जिसमें कहीं उसकी किसी बात से उसका मन दुख न जाय।

तारा थी तो तेरह वर्ष की एक सरल स्वभाव वाली बालिका ही पर वह बड़ी होशियार थी। हर एक बात की उसे जानकारी थी। नई बात जानने की उसे बड़ी उत्कण्ठा रहती थी। कहीं भी नवीनता पाने पर उसमें वह अपना मन लगा देती थी। इसी से उसमें बुद्धि बहुत आगई थी। विवेक-शक्ति बहुत बढ़ गई थी। एक छोटी सी बालिका की बुद्धि की इतनी प्रखरता, ज्ञान की इतनी तीव्रता, विवेचना-शक्ति की इतनी बढ़ती और सांसारिक व्यवहार में इतनी कुशलता देखकर लोग बड़ा अचम्भा मानते थे। सखाराम भी बहुत चकित था।

सखाराम जब तक खाता रहा, तब तक तारा चौकी पर बैठ कर समाचार-पत्र पढ़ती रही। खाना समाप्त कर सखाराम एक कुर्सी पर बैठ गया। तारा ने कहा, "अभी आप बहुत निर्बल हैं। अधिक समय तक बैठे रहना अथवा किसी प्रकार का परिश्रम करना आपके लिये उपयुक्त न होगा। पलंग पर लेट जाइये। ज़रा रुककर वह फिर बोली, "थोड़ा ठहरिये, मैं

आपके लिये पान लाना तो भूल ही गई। अभी लिये आती हूं। वह जल्दी जल्दी चली गई। सखाराम उसके आदेशानुसार पलंग पर लेट रहा। उसने सोचा, यह कितनी शक्ति वाला है। यह कितनी प्रभावशालिनी है।! इसे छोटी बालिका समझ कर मैं इसकी बातों का उल्लंघन नहीं कर सकता।

थोड़ी देर में तारा पान लेकर लौट आई। पान देकर वह वहीं धरती पर पड़ा हुआ समाचार पत्र उठाकर फिर पढ़ने लगी।

सखाराम ने पूछा, "तारा क्या पढ़ रही हो।"

तारा ने पत्र सखाराम के हाथ में देते हुये कहा, "देखिये, इसमें इसके सम्पादक ने देश की आधुनिक स्थिति का कैसा अच्छा ख़ाका खींचा है। इस समय देश की क्या दशा है। इसका दिग्दर्शन किस ख़ूबी के साथ कराया है। भारत के लोग अपने स्वत्वों को मांगते हैं। और बृटिश सरकार कैसी चालाकी से इन्हें टाल देना चाहती है। इसे पूरा पढ़ डालिये। बड़ा आनन्द आवेगा।

सखाराम ने पत्र तारा के हाथ में लौटाकर कहा, "तुम्हीं कह दो इसमें क्या लिखा है। पढ़ने में बहुत देर लगेगी।"

सखाराम ने इससे तारा के ज्ञान और बुद्धि की थाह लेना चाहा था। इसका उत्तर पाकर उसने समझ लिया कि उसकी योग्यता उसके वय से कहीं अधिक है। तारा ने कहा, "यह तो मैं कही चुकी हूं कि सम्पादक महोदय ने इसमें भारत की वास्तविक दशा के वर्णन करने में अधिक परिश्रम

किया है, और मैं समझती हूं, वे इसमें सफल भी हुये हैं। उन्होंने उक्त भाव दर्शाते हुये लिखा है कि अब भारत देश स्वाधीनता ले लेने पर तुल गया है। बिना स्वाधीन हुये यह नहीं मान सकता। अब यह बच्चा नहीं है। सब बातें समझता है। यह अच्छी तरह जानने लग गया है कि स्वतंत्रता ही से सुख मिल सकता है। इसे पूर्ण स्वतंत्रता तभी मिल सकेगी, जब कि इसके प्रबंध का अधिकार इसके ही हाथों में रहेगा और तभी इसे पूर्णानन्द प्राप्त होगा। अब यह किसी प्रकार के बहलावे में नहीं आ सकता। सरकार जो अनेकों प्रकार के सुधारों की लालच देकर इसे शान्त करना चाहती है, वह सब व्यर्थ है। हम भारतवासी अब मणि और कांच में भेद समझने लग गये हैं। वह नरम दल के नेताओं को अपनी ओर खींचना चाहती है और इसमें समझती है कि हम लोगों का बल कुछ घट जायगा और हमारी इच्छा की तेज़ी जाती रहेगी। पर यह नहीं होने का। आज नहीं तो कल ये ही नरम दल के लोग गरम दल वाले कहलाये जावेंगे और ज़ोरों के साथ अपना अधिकार मांगने में ज़रा भी नहीं हिचकिचावेंगे। सरकार को इस समय यह उचित है कि वह बिना कुछ कहे सुने ही हम लोगों का हक़ हमें दे दे। इसी में उसकी भलाई है। इससे यह होगा कि हमारी भक्ति उस पर बनी रहेगी और हम प्रत्येक समय अवसर आने पर उसकी सहायता करने से अपना मुख नहीं मोड़ेंगे। किन्तु यदि यह न हुआ तो एक दिन हम लोग

अपने अधिकार, चाहे जैसे भी मिले, लेकर ही रहेंगे । बात यह होगी कि उसके प्रति हम लोगों के हृदय में जो कुछ आदर-भाव है वह जाता रहेगा ।"

सखाराम ने मन ही मन उसकी बड़ी सराहना की । उसे अनुभव हुआ, जैसे उसकी यह योग्यता उस पर बहुत शीघ्रता से अपना असर डाल रही है । उसने पूछा, 'और क्या लिखा है '?

तारा ने कहा, "यही बात इसमें बहुत बढ़ाकर दी गई है । मैंने आप से संक्षेप में कह दिया है । मुझसे ठीक तरह से कहते नहीं बना । इसको मैं आप ही के पास छोड़ जाऊंगी । बाबू जी ने पढ़ लिया है । इच्छा होने पर पूरा पढ़ कर देखियेगा । और भी अन्य समाचार हैं जिनसे आपका जी बहलेगा ।

सखाराम—" और कौन सा पत्र तुम्हारे यहां आता है ?

तारा—" बाबू जी कई दैनिक पत्रों के ग्राहक हैं । मैं आपको नित्य ताज़े अखबार पढ़ने को दिया करूंगी उनमें आपका बहुत मन लगेगा ।

सखाराम—" अच्छा मैं उन्हें अवश्य पढ़ा करूंगा ।

तारा—मैं ज़रूर दूंगी ।

इतने ही में हृदयनाथ भीतर आते हुये दिखाई दिये । उन्होंने कहा " समाचार पत्र की चर्चा कर रही हो क्या तारा ? आज कल इनमें नित्य नई बातें छपा करती हैं, जिनके पढ़ने में बड़ा मज़ा आता है । सखाराम को भी पढ़ने को दिया करो ।

सखाराम हृदयनाथ को भीतर आते देख उठने लगा ।

हृदयनाथ ने कहा नहीं; नहीं। उठो मत, पड़े रहो। इतने अधिक दिखावे की आवश्यकता नहीं है। मैं तुम्हारे मन की बातें समझता हूं। मेरे लिये तो जैसी तारा वैसे तुम।

तारा—हां बाबूजी मैं इनसे समाचार-पत्रों के विषय में बातें कर रही थी। उनकी रोचकता बतलाकर उन्हें पढ़ने के लिये कह रही थी। इन्होंने भी अपनी इच्छा प्रगट कर इसे स्वीकार कर लिया है। और हां बाबू जी दिल्ली के उन स्वामी जी का क्या हुआ?

इसके पश्चात् तीनों में कुछ देर तक बातें होती रहीं।

बीसवां परिच्छेद ।

मन की बात ।

तारा ने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण की । सखाराम को नित्य ही नवीन समचार-पत्र पढ़ने को मिलने लगे । हृदयनानथ तो देश-भक्ति के रंग में रंगे ही थे, तारा भी उन्हीं के कारण इस ओर ढल चुकी थी । अब सखाराम पर इसके छींटें पड़ने लगीं । यहां से उसके जीवन नाटक का द्वितीयाङ्क प्रारम्भ हुआ । वह दूसरी ही ओर जाता हुआ दिखायी देने लगा । तारा के दिये हुए पत्रों को वह बड़े ध्यान से पढ़ा करता था । तारा उसके साथ देशोद्धार का विषय लेकर बहुधा टीका-टिप्पणी किया करती थी । एक दूसरे के विरुद्ध हो जाता था और फिर बड़ी देर तक वाद्‌-विवाद चला करता था । इस वादविवाद में कभी तारा जीतती थी और कभी सखाराम । इसमें एक विशेषता यह थी कि हार जाने पर कोई लज्जित नहीं होता था । यदि सखाराम कई बार लगातार जीतता जाता था तो एक बार जान कर हार जाता था । तारा भी ऐसा ही करती थी । दोनों को इसमें बड़ा आनन्द आता था । वे खूब ही हंसते थे ।

सरल स्वभाव की होने पर भी तारा बड़ी बोलने वाली थी । और किसी के साथ नहीं तो वह सखाराम के साथ बैठ कर खूब यहां वहां की बातें मारा करती थी । सखाराम भी उससे

नहीं लजाता था। घंटों बैठा हुआ गप्पें लड़ाता रहता था। पर हाँ, जब कभी हृदयनाथ उनके बीच में आ विराजते थे, तब वह चुप हो जाता था। अपनी आधी कही हुई बात भी पूरी नहीं करता था। उस समय तारा ताली पीट कर कहती थी, "अभी तक तो खूब बातें करते थे, अब चुप क्यों हो गये?" हृदयनाथ सखाराम की ओर देखकर मुस्कुरा देते थे। वह झेंप कर सिर नीचे कर लेता था। दोनों की निराले ही में बातें घुटती थीं।

एक दिन तारा ने सखाराम को कुछ उदास देखा। उसे अपनी पिछली घटनाओं का स्मरण हो आया था। प्यारे भाई का विच्छेद उसे बहुत खलता था। तारा ने पूछा, "आज आप चिन्तित से क्यों हैं?" सखाराम अपनी कहानी किसी से भी नहीं कहना चाहता था; तारा से भी नहीं। वह बात ही ऐसी थी। निर्लज्ज होकर वह उससे वे बातें कैसे कह सकता था; टाल देने के लिये सखाराम ने कहा, "दिन-रात बेकाम बैठे रहने से मन कुछ बेचैन सा जान पड़ता है। अब मैं अच्छा होगया हूं दिन भर अख़बार नहीं पढ़ा जाता। कुछ और काम मिलता, तो अच्छा होता।

तारा—"इसके लिये मैं बाबू जी से कहूंगी। पर आप यह तो कहिये कि यहाँ रहने से तो आपको कोई कष्ट नहीं होता?"

सखाराम ने अपने मुख पर कृतज्ञता का भाव लाकर कहा, "तारा! मैं नहीं समझ सकता कि ऐसी बात तुम्हारे मन में क्यों आयीं। सच तो यह है कि तुम्हीं ने मुझे बचा लिया। यदि तुम लोगों के ऐसे दयावान व्यक्ति मुझे मिलकर मेरी क्षीन अवस्था पर सहानुभूति प्रदर्शित नहीं करते, तो इस समय मेरा न जाने क्या होगया होता। तुम लोगों के प्रेम के सहारे ही मैं जी रहा हूं। तारा तुम्हीं ने मुझे प्राण दान दिया है। इसे मेरा दूसरा जीवन समझना चाहिये।"

सखाराम की आंखें छलछला आयीं। जब हृदय में दुःख बहुत अधिक हो जाता है, तब वह आसुओं के रूप में बाहर निकलने लगता है। तारा ने उसके मन का हाल कुछ कुछ समझा। उसे वह दिन स्मरण हुआ जब कि सखाराम बीच सड़क पर बेहोश पड़ा हुआ था। अहाः जैसे आकाश का एक चमकता हुआ नक्षत्र अपने पथ से अलग हो पृथ्वी पर आ गिरा हो। उसके हृदय में भी कुछ कुछ व्याकुलता छा गयी।

उस दिन तारा ने अपते पिता से सखाराम के विषय में बात की। कहा, "उनका मन किसी काम में लगाइये। यों ही बैठे बैठे अच्छा नहीं लगता।"

हृदयनाथ ने तारा की ओर देखकर कहा "तुम कौन सा काम उचित समझती हो जो उनके उपयुक्त होगा?

तारा ने हंसते हुए आगे बढ़ कर पिता का हाथ पकड़

लिया। हृदयनाथ ने उसके मन की बात ताड़ ली। उसे गोद में बैठाकर प्यार करते हुए कहा, "अच्छा, मैं शीघ्र ही इसके विषय में सोचूंगा।"

तारा उनकी अंगुलियां चटकाने लगी।

इक्कीसवां परिच्छेद।

प्रोत्साहन-दान।

तारा ने खड़ी हो कर कहा, अब भारतवासियों को उत्तेजना देने की आवश्यकता है। उनको उनकी शक्ति और उनके अधिकार बतला देने की ज़रूरत है। जिस प्रकार गरम पानी हवा के दबाव को हटा देने से फिर उबलने लगता है, उसी प्रकार ये भी अज्ञानान्धकार का पर्दा हटा देने से वे उन्मुक हो जायंगे। वे खड़े होकर अपनी अपेक्षित वस्तु को पाने के लिये चारों ओर देखने लगेंगे और अपने हाथ फैलायेंगे। ये अपने निर्दिष्ट पथ पर पहुंचने के लिये प्रस्तुत हैं। इन्हें कोई मार्ग दर्शक चाहिये।

सखाराम ने गंभीरता से कहा, "होसकता है। तुम्हारा कथन कुछ अंशों में सत्य माना जा सकता है।"

तारा- "कुछ अंशों में नहीं मैं विलकुल ठीक कह रही हूं।

सखाराम, "होगा! पर मैं अपने देश-भाइयों में संतोषी होने का एक ऐसा बुरा रोग देख रहा हूं कि उनको आगे ढकेलने से उनके गिर पड़ने का भय है। वे जैसे हैं वैसे ही रहना पसन्द करते हैं। झंझट में पड़ना नहीं चाहते। इसके अतिरिक्त उनकी मानसिक निर्बलता इतनी बढ़ी हुई है कि वे किसी भी कार्य में

अपने को दृढ़ रूप से स्थिर नहीं रख सकते । कहीं ज़रा भी कठिनता देखी कि बैठ गये । उनमें साहस का अभाव है ।"

तारा- "उनकी मानसिक निर्बलता दिखायी पड़ती है, पर वे यथार्थ में सबल हैं । वे साहसहीन जान पड़ते हैं; किन्तु वे कायर नहीं हैं । सैकड़ों उदाहरण आप स्वयं देख सकते हैं कि अंग्रेज़-सरकार ने उत्तेजना देकर उनसे कैसे बड़े बड़े काम लिये हैं । जब वे राज-भक्ति दिखाने के लिये बड़े बड़े कार्य कर सकते हैं तब देश-भक्ति दिखाने के लिये क्यों न कर सकेंगे? और आपने उनको संतोषी बनाने में भूल की है । वे बढ़ना चाहते हैं, पर बढ़ना नहीं जानते । उनका पैर ठिकाने से नहीं पड़ता और वे गढ्ढे में फिसल कर गिर जाते हैं । उनके लिये प्रोत्साहकों और पथ-प्रदर्शकों की आवश्यकता है ।"

सखाराम—"जिसको देखो, वही तो गला फाड़ फाड़ कर चिल्लाता है । पर क्या कुछ होना दिखायी देता है? तुमसे मिले हुए अख़बारों में मैं कितने ही लोगों के दिये हुए व्याख्यानों को पढ़ा करता हूं । वे ज़ोर ज़ोर से टेबिलों पर हाथ पकटते हुए लोगों को उनके जीवन का उद्देश्य समझाते और समुचित कार्यों को करने का उपदेश करते हैं । श्रोतागण 'वाह' 'वाह' कहकर ज़ोर से ताली पीटा करते हैं । किन्तु सब से अन्त में वही सोडा वाटर का सा हाल होजाता है । फिर वही चुप्पी दिखलायी देने लगती है । हां, एक बात और है । तुम जानती ही हो कि भारतीय अपने भाग्य पर कितना भरोसा रखते हैं । जो बदा होगा, वही होगा ।"

बस, यही उनको उठने नहीं देता। हमारे करने से क्या होता है? हम लाख करें, होगा वही, जो विधाता ने कर्म में लिख दिया है।" यह एक ऐसी बात है। कि जब तक उनके मन में यह बात बनी रहेगी तब तक उन्हें कितनी ही उत्तेजना क्यों न दी जाय, वे नहीं ही कसमसायेंगे।

तारा—"आप केवल वाद विवाद बढ़ाने के लिये ही अपना तर्क करते चले जाते हैं। क्या आप नहीं जानते कि इन थोड़े ही दिनों में भारतवर्ष में कितनी जागृति उत्पन्न हो गयी है। हाँ कई एक ऐसे दिखाऊ वीर भी हैं, जिन्हें केवल मौखिक शक्ति ही है। कुछ कार्य करने का अवसर आने पर वे दुम दबा लेते हैं। इतना ही नहीं, कभी कभी वे अपनी आत्मा के प्रतियोगी बन, जो न करना चाहिये, वह कर बैठते हैं। इससे लोगों के हृदय में कुछ विरक्त भाव आ जाता है। पर उनकी यह विरक्ति परिमित ही रहती है, उन्हीं मिथ्या-प्रलापकों तक ही रहती है। किसी सच्चे देश-सेवक के हृदय से निकले हुए उद्गारों से फिर उनमें कर्त्तव्य-ज्ञान पैदा होने लगता है। सच्ची उत्तेजना मिलती जाने से हमारे भाइयों की शक्ति पूर्ण रूप से विकसित हो जायगी और तब उनके लिये कोई कार्य कठिन न रह जायगा। और जो आपने उनके भाग्य पर अटल रहने की बात कही वह अब दूर हो गयी है। अपनी निरंतर की अधोगति देख कर वे सम्हल गये हैं। वे अब यह जानने लग गये हैं कि कार्य ही से भाग्य बनता है। हमारे कर्मानुसार ही हमारे भाग्य का निर्माण होता है। यदि हम

भारत को स्वतन्त्र बनाने का उद्योग करेंगे, तो ईश्वर अवश्य ही हमारे भाग्य उज्ज्वल बनावेगा और एक दिन ऐसा आवेगा, जब हम पराधीनता की बेड़ी से छुटकारा पा जावेंगे।"

सखाराम तारा की बढ़ी चढ़ी विद्वत्ता देख कर विमोहित हो गया। उसने कहा, तारा, तुम तो बड़ी चतुर जान पड़ती हो।

तारा बोली, "यदि मेरी यह चतुरता आप पर कुछ काम कर गयी, तो मैं अपने को बड़ी भाग्यवती समझने लगूंगी।"

सखाराम- "मुझ से तुम क्या चाहती हो?"

तारा- "मुझे विश्वास है कि आप मेरे मन की बात जानते हैं फिर भी आप अनजान बन कर इस प्रकार मुझ से प्रश्न करते हैं। अच्छा, मैं स्पष्ट ही क्यों न कह दूं। मैं चाहती हूं कि आप भी देश-सेवा के कार्य-क्षेत्र में आगे बढ़ कर औरों का हाथ बटावें। देश का कुछ कार्य करके अपने जीवन को सफल करें। देश का उद्धार करते करते आप अपना भी उद्धार कर लें।"

सखाराम-"यह मैं किस प्रकार कर सकता हूं?"

तारा-"यही जो मैं कह चुकी हूं। आप को भारतवासियों को उनकी शक्ति बतलाना होगा। उनको उनके निर्दिष्ट स्थान पर पहुंचाने के लिये अगुवा बनना होगा। स्वयं कष्ट सह कर देश को बन्धन-मुक्त करना होगा। लोगों को उनके कर्त्तव्य के ज्ञान का बोध कराते हुए समय समय पर कुछ करके दिखाना होगा। आपको वे सब प्रयत्न करने होंगे, जिन से देश की भलाई हो।"

सखाराम-"मैं इतना योग्य नहीं हूं, जितना कि तुम मुझे समझती हो। मुझे कोई कार्य सौंपा जाने पर मैं औरों के साथ ही साथ कदाचित् उसे पूर्ण कर सकूंगा, पर अपने पाछे औरों को चलाना और उन्हें सफलता प्राप्त करा देना मेरी सामर्थ्य के बाहर है।"

तारा-"आप में योग्यता है। आप समर्थ हैं। यदि ऐसा मैं न जानती, तो कदापि आप से यह कार्य करने का अनुरोध न करती।"

सखाराम—"अच्छा तुमने कैसे जाना कि मैं योग्य और समर्थ हूं?"

तारा-"वाह! यह भी आपने अच्छा पूछा। इतने दिन तक आप के साथ रहने पर भी क्या मैं आपको नहीं पहिचान सकूंगी? बाबू जी के विचार भी ऐसे ही हैं, जैसा कि मैं कहती हूं।"

सखाराम-"तुम भूलती हो तारा! बाबू जी भी मेरे विषय में धोखा खा गये हैं। तुम तो मेरा स्वभाव जानती ही हो। मैं किसी अपरिचित व्यक्ति के सन्मुख अपने मन के भाव नहीं प्रकट कर सकता। न जाने क्यों, ईश्वर ने मुझे इतना शक्ति-हीन बनाया है। फिर मैं यह महान् कार्य कैसे पूर्ण कर सकूंगा?"

तारा-"आप के लजीले स्वभाव को मैं जानती हूं। आप से इतनी बात करते समय मैं उसे भूल नहीं गयी थी। आप के लिये इस का छोड़ देना कुछ असम्भव तो है ही नहीं। प्रयत्न करने से क्या नहीं होता? भारत के उद्धार करने का कार्य इस

से कई गुणा अधिक कठिन है। इससे कहीं आप यह न कह बैठें कि यह तो कभी होने का ही नहीं। भारत कभी स्वतन्त्र हो ही नहीं सकता। यह विचार मन से हटाइये। पुरुष-पुंगव की नाईं बात करिये। आप यह विश्वास रखिये कि आपका मनोबल दृढ़ है। जिस कार्य को करने का आप बीड़ा उठायेंगे, उसे अवश्य ही पूरा कर सकेंगे। जब कि संसार में स्थिर कुछ भी नहीं है सब ही परिवर्त्तनशील है, तब आपका स्वभाव क्यों नहीं बदलेगा? अभी आप इतना हिचकिचाते हैं, पर एक समय वह आवेगा, जब कि आप एक बड़े जन-समूह के मध्य में खड़े होकर शेर की तरह गर्जना करते हुए श्रेष्ठ भारत-बन्धुओं का अधःपतन दर्शाकर उन्हें कंपा देंगे और उनकी असीम शक्ति पर प्रकाश डाल कर उन्हें हाथ के इशारे से अग्रसर करावेंगे। समय पर सच्चे और आदर्श योद्धा की भांति सब के आगे होकर कष्ट झेलने के लिये आप छाती अड़ावेंगे। इस धर्मयुद्धाग्नि में किसी भी समय आप अपने प्राणों की आहुति देने से नहीं घबरायेंगे। देश के लिये सब कुछ दे देने पर भी आप सर्वस्व पा जायंगे। आप देवों की भांति अमर हो जायंगे।"

सखाराम कलेजे को थाम कर तारा की बातें सुनता रहा। उसे जान पड़ा जैसे कोई स्वर्ग की देवी भारत को उद्धार कर देने की प्रतिज्ञा कर पृथ्वी-तल पर आयी हो। उसके एक एक शब्द में मन्त्र का सा प्रभाव था। जिस पर फूंक मार दे, संभव नहीं, वह फिर उसकी इच्छा के विरुद्ध चल सके।

बाईसवां परिच्छेद ।

कर्तव्य-ज्ञान का जन्म ।

तारा दौड़ी दौड़ी आयी और सखाराम का हाथ पकड़ कर खींचने लगी। सखाराम ने कहा, "क्या है ? क्या बात है, जो इस तरह घसीटती हो ?"

तारा ने हंसते हुए कहा, "उठिये चलिये।"

सखाराम—"कहां चलना है ?"

तारा—"बस, चले चलिये।"

सखाराम—"कुछ कहोगी भी कहां चलना है।"

तारा—"कुछ पूछिये नहीं। जहां मैं कहूं, चले चलिये।"

सखाराम—"अच्छी ज़बरदस्ती है। अच्छा कपड़े तो पहिन लेने दो।"

तारा—हां, पहिन लीजिये। जल्दी करिये।"

सखाराम कुर्सी पर बैठा हुआ 'सुधा-सागर' नामक समाचार-पत्र पढ़ने में तल्लीन था। उसमें "स्वराज्य—समीक्षा' शीर्षक एक लेख था। उसके लेखक 'सत्य-सखा' नामधारी कोई महाशय थे। लेख में ऐसे श्रेष्ठ एवं गम्भीर विचारों और

विचारणीय तत्वों का समावेश था कि सखाराम को वह बहुत रुचा किन्तु उसने एक-तिहाई भी न पढ़ने पाया था कि तारा आकर गड़बड़ मचाने लगी। विवश होकर उसे यों ही छोड़ देना पड़ा।

तारा बहुत जल्दी कर रही थी। वह जितनी ही शीघ्रता करने लगी, सखाराम को उतना ही विलम्ब लगने लगा। क़मीज़ की बांह में हाथ ही नहीं जाता था। खींचा-झपटी में वह एक जगह से थोड़ी सी फट भी गयी। सखाराम ने तब उकता कर कहा, "तुम तो भाई कपड़ा पहिनने में भी आफ़त किये डालती हो। "तारा ने उसे सुनकर भी नहीं सुना। वह 'चलिये, चलिये' लगाये ही रही। जैसे तैसे सखाराम बाहर निकला। गाड़ी खड़ी थी। दोनों उसमें बैठ गये। कोचवान 'हटो, हटो' कहता हुआ उसे कम्पनी बाग़ की ओर ले जाने लगा।

निर्दिष्ट स्थान पर पहुंचने पर सखाराम ने देखा कि सैकड़ों की संख्या में लोग चारों ओर से झुण्ड के झुण्ड चले आ रहे हैं। मोटरों, मोटर-साइकिलों और साइकिलों की संख्या बहुतायत से देखी। हाथ में हाथ दिये हुए नवयुवक-गण, दो दो, चार चार और छै छै करके बाग़ में प्रवेश करते जाते हैं। वे दोनों भी भीतर पहुंचे। तारा सखाराम का हाथ पकड़े हुए आगे आगे जा रही थी। सखराम ने बड़े आश्चर्य के साथ देखा कि लोग तारा को देखकर आदर से मस्तक नवा एक ओर हो उसके जाने का मार्ग ख़ाली कर देते थे। वह निश्शंक होकर

चली जाती थी। एक स्थान पर थोड़ा रुककर सखाराम ने धीरे से तारा से पूछा, "यहां क्या होगा? क्या किसी का व्याख्यान है? "तारा ने मुस्कुरा कर कहा "हां"। वह सखाराम के साथ सब बीच में से होती हुई व्याख्यान-मञ्च के पास एक अच्छे से स्थान पर पहुंचकर बैठ गई।

अन्य कार्रवाइयां होने के अनन्तर सभापति के आदेश से व्याख्यान-दाता मञ्च पर आ खड़े हुए। सखाराम ने आंख फाड़ कर देखा। तारा उसकी ओर देख कर हंस रही थी। सखाराम के नेत्रों में उत्सुकता और विस्मय छा गया। हृदयनाथ अपनी विशाल देह लिये हुए खड़े थे। भीमकाय पर लम्बी घनी और श्वेत दाढ़ी बड़ी प्रभावशालिनी जान पड़ती थी। उनको देखते ही समुद्र की लहरों के सदृश उमड़ता हुआ जन समूह एक दम शान्त हो गया। चारों ओर अर्धरात्रि का सा सन्नाटा छा गया। हृदयनाथ ने उस शांति को धीरे धीरे भंग करना आरम्भ किया। धीमी आवाज़ क्रमशः तेज़ होकर चारों ओर फैलने लगी। सब लोग उनकी गम्भीर और मन पर असर डालने वाली वाणी सुनने लगे। सखाराम भी छाती पर हाथ रख उछलते हुए हृदय से उनकी ओर देखता हुआ उनकी ब्रह्मा के मुख से निकली जैसी अकाट्य और प्रेरक बातों में लीन होगया।

सखाराम ने देखा कि हृदयनाथ की ओजस्विनी वाणी श्रोताओं पर अपना काम अद्भुत प्रकार से इस तरह

पर कर रही है जैसे किसी गुणी वैद्य की कोई अनुभूत रामबाण औषधि किसी रोगी पर अपने किये का फल तत्काल दिखाती है। कभी तो वे उनके सन्मुख कोई हृदय-विदारक दृश्य लाकर इस तौर पर रख देते हैं कि जिससे उनकी आंखों से आंसू टपकने लगते हैं और कभी वे उन्हें आशा देकर उनके कुम्हलाये हुये मुख पर आनन्द के चिन्ह दिखा देते हैं। उन्होंने भारत के पूर्व और वर्तमान समय के इतिहास को लेकर स्वतन्त्रता और परतन्त्रता में ऐसा भेद निरूपण किया कि लोगों की आंखें खुल गईं। जैसे उनकी आंखों में पड़ा हुआ बहुत दिनों का जाला एकाएक निकल गया हो। वे स्पष्ट रूप से अमृत और विष में अन्तर देखने लगे। उन्होंने पराधीनता से मुक्त होने के अनेकों उपायों का वर्णन करते हुए कहा कि यदि कोई स्वतन्त्र बनना चाहता है तो इससे सहज उपाय कुछ नहीं है कि वह अपने को स्वतन्त्र समझ ले। फिर वह किसी के वश में नहीं हो सकता। उस समय कोई ऐसी शक्ति पृथ्वी पर नहीं रह जायगी, जो उसे अपनी इच्छा का अनुगामी बना सके। जंगल में रहने वाले अकेले सिंह की भांति वह निज इच्छाचारी हो जायगा।

घर लौटते समय सखाराम के हृदय का भाव कुछ दूसरा ही था। उसने अपने को बहुत बदला हुआ पाया। उसका मन बार बार उस से कहता था कि तुम स्वतन्त्र बन जाओ और भारत के लोगों का अज्ञान दूर कर उन्हें स्वतन्त्रता का पाठ पढ़ाओ।

तेईसवां परिच्छेद।

हिचकिचाहट दूर हो गई।

खाराम का उद्वेग कम होने लगा। वह धीरे धीरे शक्ति लाभ करने लगा। उसे अपना मार्ग सूझ गया। उसी की ओर वह बढ़ने लगा। हर समय उसे वही चिन्ता रहने लगी कि मैं कैसे और कब देश का एक सच्चा भक्त कहा जाने लगूंगा। निरंतर वह उसी उद्योग में रहने लगा। उसे विश्वास था कि तारा और हृदयनाथ इस विषय में मेरे सच्चे सहायक हैं और मैं उनकी सहायता से अवश्य ही एक दिन यश लाभ कर सकूंगा। उसका सोचना ग़लत नहीं था। उन दोनों के हृदय में भी इस बात का दृढ़ निश्चय था कि थोड़े ही प्रयत्न से सखाराम को वे ठीक राह पर ला सकेंगे। और इस कार्य की ओर वे झुक भी चुके थे। हृदयनाथ जानते थे कि सखाराम तारा के द्वारा शीघ्र ही योग्य हो जायगा, इसी से उन्होंने सब भार उसी पर छोड़ दिया था। बीच बीच में केवल उसे कुछ सलाह दे दिया करते थे। तारा ने इस काम के करने में कुछ कसर नहीं की। उसके हृदय में न जाने कहां से यह विचार आगया था कि ईश्वर ने सखाराम ऐसे सुन्दर युवक को संसार में व्यर्थ ही न भेजा

होगा। ज़रूर उसका कुछ मतलब है और उसका यह मतलब उसके देश-कार्य में लग जाने से सिद्ध होजायगा। यह सोचकर उसने अपना मन इस ओर और भी लगाया।

फिर तो तारा सखाराम को नगर में होने वाले प्रत्येक अच्छे अच्छे व्याख्यानों में ले जाने लगी। वह भी बड़ी उत्कंठा से उसके साथ जाया करता था। उसकी इस ओर इतनी अधिक रुचि बढ़ी कि वह तारा के चलने के लिए कहनेकी राह नहीं देखता था। शनिवार और रविवार के दिन सन्ध्या होने से बहुत पहिले ही अपने वस्त्र पहिनकर वह दरवाज़े की ओर मुंह करके बैठता था। तारा को देखते ही उठ खड़ा होता और उमंग से उसके साथ जाता था। तारा व्याख्यान में कोई अच्छी और ध्यान देने योग्य बात आने पर सखाराम का हाथ दबाती थी। किन्तु सखाराम को इसकी कोई आवश्यकता न थी। वह स्वयं ही उत्सुक होकर एक एक शब्द सुना करता था।

बहुधा वह अकेले में बैठ कर कल्पनायें किया करता था। देखता था कि वह सर्वसाधारण की एक सभा के बीच में खड़ा होकर अपनी वक्तृता दे रहा है। देशोपयोगी अनेक बातें उन्हें समझा रहा है। घंटों वह इसी अवस्था में पड़ा रहता था। तारा से उसके हृदय की बातें छिपी नहीं थी। वह उचित अवसर खोज रही थी।

सौभाग्य से उन्हीं दिनों में पंडित ईश्वरानन्द जी वहां पधारे। तारा के अनुरोध से हृदयनाथ ने उन्हें अपने ही यहां

टिकाया । हृदयनाथ स्वयं ही एक देश-सेवक होने के कारण देश के बहुत से अग्रगण्य नेताओं को पहिचानते थे और उनसे मेल मुलाक़ात भी रखते थे। पंडित ईश्वरानन्द जी से उनकी बड़ी अनिष्ठता थी। दोनों एक दूसरे से मिलकर बहुत प्रसन्न हुए। हृदयनाथ ने उनका बहुत आदर-सत्कार किया। बातों ही बातों में उन्होंने उनसे सखाराम के विषय का सारा हाल कह सुनाया और अपना आन्तरिक मनोभाव भी प्रकट किया। पंडित जी ने उनके इस कार्य में योग देने की अपनी सहर्ष सम्मति दी। इसके लिये उन्होंने वहां पर कुछ दिनों तक ठहरने का भी वचन दिया।

पंडित ईश्वरानन्द जी के आने के पश्चात् ही सखाराम पर अचानक एक विपत्ति आई, जिसके लिये वह पहिले से ज़रा भी तैय्यार नहीं था। एक दिन पंडितजी, हृदयनाथ और तारा में न जाने क्या बड़ी देर तक फुस् फुस् बातें हुईं। फिर वे सखाराम को लेकर कम्पनी-बाग़ की ओर चले। ईश्वरानन्द जी का प्रभाव शाली व्याख्यान हुआ। व्याख्यान हो जाने के बाद तारा ने एक शरारत की। उसके इशारे से सखाराम आगे ढकेल दिया गया। पहिले कभी ऐसा अवसर नहीं आया था। लोगों के सन्मुख भौंचक सा खड़ा होकर वह चारों ओर देखने लगा। पहिले ही पहिल इतने मनुष्यों को अपने को चारों ओर से घिरे हुये देखकर वह घबड़ा गया। कुछ कहना तो दूर रहा, उसके मुख से आवाज़ तक न निकली और उसे चक्कर सा आने लगा।

करुण-दृष्टि से उसने तारा की ओर देखा। तारा शरारत से भरी हँसी हँस रही थी। उस समय सखाराम का चेहरा भौचक-सा हो रहा था। मुंह रोआंधा-सा था। उसे जान पड़ता था, जैसे चारों ओर असंख्य दैत्य उसे अपना आहार बनाने के लिये दांत निकाले खड़े हैं। जब तारा ने देखा कि सखाराम बहुत सताया जा चुका है, तब उसने अपने पिता की ओर दृष्टि फेर कर धीरे से कहा, "बस कीजिए, बहुत हो चुका।" हृदयनाथ सखाराम के पास जा खड़े हुये। सखाराम और लज्जा भय से विह्वल होकर अपने स्थान पर बैठने के लिए बढ़ा, लेकिन हृदयनाथ ने उसका हाथ अपने हाथ में ज़ोर से थाम कर जनता की ओर मुख करके कहा, "आज मुझे बड़ा हर्ष हो रहा है कि मैं आप लोगों के सन्मुख एक ऐसे व्यक्ति का परिचय देने के लिये खड़ा हुआ हूं, जो अपनी अपूर्व एवं अप्रतिम प्रतिभा से आप लोगों को चकित कर देंगे। यह मेरा निज का अनुभव है कि इनकी ओर देखने मात्र ही से इनके प्रति प्रेम उत्पन्न हो जाता है। आप लोग भी इस समय अपने हृदयों में टटोलने से मेरी बात की सत्यता का प्रमाण पा जावेंगे। फिर जब आप इनकी वक्तृता सुनेंगे और जब ये आप लोगों को देश-सेवा के लिये आह्वान करेंगे। तब आप इनके अद्भुत पराक्रम को देखेंगे। अधिक कहने का कोई प्रयोजन नहीं। शीघ्र ही वह समय आवेगा, जब यह आप लोगों के साथ हिलमिल कर कार्य करेंगे। इस समय कारण वश ये अपना मधुर और साथ ही

हृदय में चुभ जाने वाला भाषण देने से असमर्थ है, इसे मैं अपना और आप लोगों का एक प्रकार से अभाग्य भी कह सकता हूं। फिर भी इस आशा से कि शीघ्र ही ये अपनी इच्छा से हम लोगों के सन्मुख आवेंगे, हमें धैर्य रखना चाहिये।" इसके अनन्तर कुछ और थोड़ा सा सखाराम के विषय में कह कर हृदयनाथ बैठ गये।

इस घटना से सखाराम मन ही मन बहुत लज्जित हुआ। उस दिन रात्रि के भोजन के लिये जब सखाराम को बुलाया गया, तब वह सब के साथ बैठ कर खाने को राज़ी नहीं हुआ। विवश होकर तारा ने उसके कमरे ही में भोजन पहुंचाया। तारा को देखते ही वह लज्जा से मानों गड़ गया। समयोचित व्यवहार करने वाली तारा उस समय सखाराम से व्यङ्ग नहीं बोली बल्कि अनेकों प्रकार के उसे सान्त्वना दी और उसका उत्साह बढ़ाया।

ईश्वरानन्द जी ने भी सखाराम के पोच मन को ऊँचा करने के लिये उससे बहुत प्रकार की बातें की। यहां वहां के बहुत से उदाहरण देकर उसे समझाया। कहा, "सखाराम! इस बात से तुम्हें लज्जा नहीं आनी चाहिये कि तुम कुछ लोगों के सन्मुख अपना मुख नहीं खोल सके हो। इसका तुम्हें किञ्चित् मात्र भी दुःख नहीं होना चाहिये। यह तो एक अभ्यास है। धीरे धीरे अभ्यास करते करते हर कोई घण्टों बकता रह सकता है। कोई कोई स्वभाव ही से बकबकिये होते हैं। उनको इस

कार्य में अधिक कठिनता नहीं होती। किन्तु किसी किसी का स्वभाव तुम्हारी तरह इतना लजीला होता है कि यह उनके लिये असम्भव सा जान पड़ता है। पर क्या ऐसी बात है? नहीं। चाहे कोई भी कितने ही मनुष्यों के सन्मुख अपने मन के विचार प्रगट कर सकता है। बस थोड़ा सा मन खुल जाने की आवश्यकता है। फिर तो वह किसी भी समय किसी भी विषय पर फव्वारे की तरह पानी छोड़ने लगता है।

यह कोइ बात नहीं है कि बोल सकने वाले लोग अच्छे हैं और जो बोलना नहीं जानते, वे बुरे हैं। बहुत से दवाइयां बेचने वालों को देखते होगे। वे राख में थोड़ा सा कपूर मिलाकर उसे दन्त-मञ्जन बतला अपनी लच्छेदार बातों से लोगों को फांस कर बेच लेते हैं। क्या वे अच्छे कहे जा सकते हैं? क्या सभ्य समाज में उनका कोई आदर करता है? कुंजड़िनों और खटकिनों को देखा होगा। वे खुले मैदान किस प्रकार के हाव-भाव दिखला कर अपने चीत्कार से सारा मुहल्ला सिर पर उठा लेती हैं। उन्हें भला कोई अच्छा कह सकता है? इसी लिये कहता हूं कि तुम अपने मन में दुःखित न हो।

यह तो एक शक्ति है। प्रयत्न करने से प्रत्येक व्यक्ति इसे प्राप्त कर सकता है। इस शक्ति के आ जाने ही से कोई भला नहीं कहा जा सकता। जो इसका सदुपयोग करता है, वह अच्छा है और इसका दुरोपयोग करने वाला बुरा है।

अमेरिका के एक विद्वान पुरुष के विषय में सुना होगा।

उसने अपनी विद्वत्ता से लोगों को आश्चर्यान्वित कर रखा था। किन्तु वह केवल लिखने ही में सिद्ध हस्त था। उसको बोलना नहीं आता था। एक दिन वह भरी सभा में खड़ा कर दिया गया। वहां पर वह इतना घबड़ा गया और इतना भयभीत हुआ कि पागल की तरह लोगों की भीड़ को चीरता हुआ भागा। रास्ते में उसने कहीं भी दम नहीं लिया। घर पहुंच कर वह भीतर से चारों ओर के किवाड़ बन्द कर पड़ रहा। कई दिन तक शर्म के मारे घर से बाहर नहीं निकला। उसी उद्विग्नावस्था में उसने प्रण किया कि मैं एक नामी वक्ता बनूंगा। इसके लिये उसने घोर परिश्रम किया। अपने को अपनी इच्छानुसार चलाने के उद्योग में उसने सब कुछ कर डाला। कुछ भी उठा न रखा। बहुत दिनों तक वह दीवाल के सामने खड़ा होकर उसको अपना व्याख्यान सुनाया किया। जङ्गल के सून-सान स्थानों पर जाकर उसके वृक्षों, उनकी टहनियों और पशुओं के मध्य में खड़े होकर सैकड़ों वक्तृतायें दीं। अन्त में उसकी इच्छा पूर्ण हुई। वह एक प्रसिद्ध वक्ता हो गया। उसकी वक्तृत्व-कला की सब लोग प्रशंसा करने लगे। इसी प्रकार तुम भी एक अच्छे वक्ता बन सकते हो।

बोलना सीखने वाले को अपना भय दूर करने के लिये एक बात अवश्य ध्यान में रखना चाहिये। वह यह है बोलने वाला अपने को थोड़ी देर के लिये सर्व-श्रेष्ठ मान ले। सुनने वालों को वह बच्चों के तुल्य समझे। समझ ले कि मैं बड़ा

ज्ञानी हूं और ये बिलकुल मूर्ख हैं। मैं इन को उपदेश दे रहा हूं। जो बातें ये नहीं समझते उनको मैं इन्हें समझा रहा हूं। अथवा वह उन्हें पत्थर की मूर्त्तियां मान ले। यह भी न हो सके तो उसे लोगों की ओर से अपनी आंख हटाकर किसी वृक्ष की पत्तियों की ओर देखना चाहिये। वह उन्हीं पर अपने मन के भावों को प्रगट करे। ऐसा करते रहने पर वह शनैः शनैः इस कला में प्रवीरण हो जायगा।

यह बात अवश्य है कि सर्व साधारण को अपना विचार जनाने के लिये बोलने की शक्ति होनी चाहिये। पुस्तकें लिखने से वे ही उन्हें पढ़ सकेंगे, जो पढ़ना जानते हैं। पर कुछ कहने से सब लोग सुन सकेंगे।

अन्त में पंडित जी ने, कहा, "सखाराम निराश मत हो। यदि तुम यह शक्ति प्राप्त करना चाहते हो, तो अवश्यमेव यह तुम्हें एक दिन मिलेगी। इसे मेरा आशीर्वाद समझो।"

चौबीसवाँ परिच्छेद।

विजय कामना और विदाई।

रा की शुभाकांक्षा पूर्ण हुई। हृदयनाथ का प्रयत्न सफल हुआ। पंडित ईश्वरानन्द जी का आशीर्वाद विफल नहीं गया। सखाराम की लज्जा कुछ ही दिनों में छूट गयी। उसे बोलने का अभ्यास पड़ गया। इसमें उसे आशातीत सफलता प्राप्त हुई। जब वह बोलने को खड़ा होता था, तब लोग एकाग्र चित्त होकर उसकी ओर ध्यान देते थे। उसका सुन्दर मुख अवलोकन करते थे और उसकी प्यारी अवाज़ सुनते थे। सखाराम का साधारण से साधारण कथन भी उनके हृदय में वेद-वाक्यों के समान बैठ जाता था। मुख की सुन्दरता के साथ ही साथ सखाराम का हृदय भी अत्यन्त स्वच्छ था। उस स्वच्छ हृदय से निकली हुई मीठी बातों का प्रभाव लोगों पर क्यों न पड़ता? उसके खड़े होते ही उन पर एक गुप्त शक्ति अपना काम कर जाती थी। वे ग्रामोफ़ोन के प्लेटों की तरह उसके मुख से निकले हुए वाक्यों को दुहराने लगते थे और कल द्वारा चलाये गये पुतलों की भांति उसके इशारे पर घूमने लगते। लोग उसे परमात्मा का भेजा हुआ दूत समझते थे और उसकी आज्ञाओं को शिरोधार्य करते थे।

सखाराम ने शीघ्र ही अपनी धवल कीर्ति चारों ओर फैला दी। बढ़ते हुए चन्द्र के सदृश उसका यश विस्तीर्ण होने लगा। दूर दूर से लोग उसे देखने को आने लगे। कोई अप्रसन्न होकर नहीं लौटता था। दैनिक और साप्ताहिक समाचार पत्रों ने तथा अनेकों मासिक पत्रों ने उसकी प्रशंसा मुक्त कंठ से की एक ने कहा, "..........यह एक विरला ही धुरंधर वक्ता है। ...." दूसरे ने कहा, "..........इसे मोहिनी विद्या मालूम है, उसी के द्वारा यह लोगों को खींच लेता है। ......" तीसरे ने कहा, "..........इसे दैवी शक्ति है। ....अपनी करनी से यह कुछ नहीं करता, "..........चौथे ने कहा, "........यह कामदेव के सदृश स्वरूपवान और गंधर्व के समान मनोहर शब्द करने वाला युवक सहज ही लोगों का मन हरण कर लेता है और उनको अपनी इच्छानुकूल चलाता है। ...." इसी प्रकार औरों ने भी उसकी बड़ाई के गीत गाये।

जब सखाराम अच्छी तरह से अपने पैरों पर खड़ा होने लगा, जब उसने देखा कि उसे अब किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं है। उसमें अपने कार्य करने की शक्ति आ गयी है तब उसे एक स्थान पर जम कर रहना बुरा जान पड़ने लगा। उसकी इच्छा हुई कि देश देशान्तरों में भ्रमण कर तारा के बतलाये हुये अपने इस नवीन उद्देश्य की सिद्धि क्यों न करूं। नगर नगर में, गांव गांव में और भारत के कोने कोने में जाकर लोगों

को उनके कर्त्तव्य का ज्ञान कराने, उनको उनके दास होकर रहने की बात बतला के और इस बन्धन से मुक्ति पाने का द्वार दिखा कर उन्हें स्वतन्त्रता के मीठे फल चखने के लिये उत्साहित करें। अपने इस विचार को उसने तारा पर प्रगट किया।

तारा अपने कमरे के एक कोने से टिकी हुई चटाई पर बैठी थी। सखाराम भी उसके पास ही जाकर बैठ गया। कुछ देर तक दूसरी तरह की बातें करने के पश्चात् उसने अपना मन्तव्य उसके सन्मुख रखा। कहा, "तारा! तुम्हारी दया से मैं अब यथार्थ में मनुष्य कहलाने योग्य बन सका हूं। तुमने मुझे इस योग्य बना दिया है कि मैं पावन और अनन्त सुख तथा शान्ति दायक सेवा-वृत्ति धारण कर सकूं। इस कृपा का बदला कल्पान्तर तक नहीं चुकाया जा सकता।"

तारा की सखाराम के साथ बातें करते समय मुस्कुराने की आदत सी पड़ गई थी। उसने मन्द हास्य से कहा, "आप मेरे आगे अपनी कृतज्ञता प्रकाश करने आये हैं। रहने दीजिये।"

सखाराम, "नहीं, मैं इसलिये नहीं आया हूं। केवल कृतज्ञता प्रकाश करने से मैं तुम्हारे उपकारों के बोझ को थोड़े ही हटा सकता हूं। मेरा अभिप्राय दूसरा ही है।"

तारा--"तो फिर वही कहिये न? इस प्रकार की भूमिका क्यों बांध रहे हैं?"

सखाराम--"अब मैं सब स्थानों में घूम घूम कर भारत के प्रत्येक व्यक्ति के कानों में तुम्हारा दिया गुरु-मन्त्र, स्वतन्त्रता का

संदेश पहुंचाना चाहता हूं । इसी की आज्ञा चाहता हूं । यदि तुम समझो कि मेरे लिये यह समय आ गया है, तो मुझे इस कार्य के करने का आदेश करो ।"

तारा ने देखा कि सखाराम का मुख अपूर्व उत्साह से विकसित हो रहा है । प्रेम और हर्ष से उसकी आंखें भर आयीं । मस्तक का पसीना पोंछने के बहाने से उसने अपना सिर झुकाकर आंचल से उन आंसुओं को पोंछ डाला । गद्गद् हो कर कहा, "अहा ! परमात्मा ! आज मुझे मानों स्वर्ग का राज्य मिल गया है । मैं इसी की राह देख रही थी कि आप मुझसे स्वयं इस बात को कहें । आज वह शुभ दिन देखने को मिल गया । मेरे आनन्द का पारावार नहीं है । आपसे मुझे ऐसी ही आशा थी । आपने मुझे आज कृतार्थ कर दिया । बड़ी प्रसन्नता से मैं आपको विदा करूंगी । देश-सेवा के लिये आपको सजा कर भेजूंगी । तन-मन लगा कर इस कार्य को करिये । ईश्वर अवश्य आपको सफलता प्रदान करेगा । यह कार्य कठिन है । आपको अनेकों प्रकार के कष्टों को झेलना पड़ेगा । नाना भाँति की आप पर तकलीफें आवेंगी । तथापि आप से मुझे पूर्ण आशा है । बस, एक मन और एक प्राण से इसमें लग जाइये । इसके अतिरिक्त और दूसरी सब बातें भूल जाइये । प्रत्येक क्षण आपके सन्मुख यह उद्देश्य झूलता रहना चाहिये । प्रत्येक पल आपका इसी चिन्ता में व्यतीत हो । आपके समय का हर एक अंश इसी कार्य के करने में लगे । सब के साथ ही आप मुझे भी विस्मरण

कर जाइये। मैं भी आप को भूल जाऊंगी, जिसमें फिर आपका मन मेरी ओर न खिंचे। मैं आप को बिदा कर दूंगी। फिर आप से मेरा कुछ सम्बन्ध न रह जायगा। आपको भी मुझे अन्य साधारण लोगों की भांति देखना होगा। और क्या कहूं? आप सब जानते हैं। सब समझते हैं। जो ठीक समझते हों, वह करियेगा।

बड़े धूम धाम से सखाराम की विदाई हुई। नगर के तमाम छोटे-बड़े उसे चाहने लगे थे। बहुत भीड़ इकट्ठी हुई। हृदयनाथ ने पहिले तो सखाराम के जाने का दुःखदायक दृश्य खींचा। लोगों को जान पड़ा, जैसे कोई उनकी आँखें निकाले लिये जाता है। किसी ने जैसे कोई उनके प्राणों की प्यारी वस्तु छीन ली हो। फिर उन्होंने जनता को हर्षित कर दिया। कहा कि वह उन्हीं के काम में जा रहा है। उन्हें प्रसन्न हो जाना चाहिये वे एक योग्य और सच्चे वीर के हाथों में अपना गुरुतर और विश्वसनीय कार्य सौंप रहे हैं। भारत के इस सच्चे सपूत के लिये उन्हें गर्वित होना चाहिये। सब लोगों ने प्रसन्नता सूचक ध्वनि की। अन्त में हृदयनाथ ने सब के साथ मिलकर ईश्वर से सखाराम की विजय-कामना और अपने सब के उद्देश्य की पूर्त्ति के निमित्त प्रार्थना की।

जाते समय सखाराम की दृष्टि तारा की ओर गई। तारा ने भी सखाराम को देखा। दोनों आँखों से दो दो बूंद आँसू परस्पर मिलने के लिये दौड़ पड़े।

स्वयंभू ने भारतोद्धार के लिये अवतार लिया हो। बारम्बार वे मन ही मन उसको नमस्कार करते थे और बड़ी श्रद्धा से उसकी आज्ञाओं का पालन करते थे। अनेकों सरकारी पदाधिकारियों ने अपनी अपनी नौकरियां त्याग कर स्वराज्य का कार्य आरम्भ कर दिया। हाई स्कूल और कालेज के विद्यार्थी किसी बात की परवाह न कर इसमें सम्मिलित हो गये। बड़े ज़ोरों के साथ स्वराज्यन्दोलन मचा। प्रत्येक सन्ध्या को जहां देखो वहीं छोटे छोटे बालक स्वराज के गीत गाते हुए फिरने लगे। स्त्रियों में भी एक विचित्र प्रकार का सङ्गठन हो गया। वे इस कार्य में अपने अदम्य उत्साह से भाग लेने लगीं। यहां तक कि वेश्याएं भी अपने घृणित कार्यों को एकदम से तिलाञ्जलि देकर चर्खे से सूत निकलने लगीं। चारों ओर से वन्देमातरम् की ध्वनि आने लगी। भारत माता का जयघोश शब्दआवलि वृद्ध-वनिता द्वारा उच्चारित किये जाने पर आकाश में दूर दूर तक गूंजने लगा। ऐसा जान पड़ने लगा, मानों शीघ्र ही सतयुग आ जायगा और भारतवासी दिन भर अपना उचित कार्य कर रात्रि में सुख और शान्ति की नींद सोवेंगे।

कानपुर निवासियों की भी इच्छा हुई कि वे भी औरों की नाईं सखाराम को अपने नगर में निमन्त्रित कर उसका यथोचित सत्कार करें। इस आशय का तार उसके पास भेजा गया। कानपुर के निकट ही सखाराम का ग्राम था। अचानक पिछली घटना उसके हृदय में प्रवेश कर गयी। उसका समस्त अंग

किया। कोई कमी नहीं रखी। सन्ध्या के समय फिर सर्व-सम्मिलन की आयोजना की गयी। इस बार पहिले जो लोग सखाराम के दर्शन से वञ्चित रह गये थे, वे भी आ जुटे। सखाराम ने यहां पर अपनी सारी शक्ति को समेट कर दूने उत्साह से दिल को हिला देने वाला प्रभावशाली भाषण दिया। उसका सारांश यह था:—

"भाइयो! आप लोगों में से ऐसा कोई भी न होगा, जो सुख न चाहता हो। सब के हृदयों में प्रत्येक समय यही आकांक्षा बनी रहती होगी कि हम दिन-रात-आठों पहर-चैन की बंशी बजाया करें, हमें किसी बात की चिन्ता न रहे और अपने जीवन को शान्ति के साथ आनन्द की लहरों की थपकियां लेते हुए बितावें। यह एक स्वाभाविक बात है। कष्ट में पड़े रहना कोई पसन्द न करेगा। सब कोई सुख ही चाहेंगे। किन्तु सुख कब मिल सकता है? क्या सुख कोई ऐसी वस्तु है, जो इच्छा करते ही प्राप्त हो जाती है। नहीं, जिस प्रकार हमें अन्य किसी वस्तु के प्राप्त करने के लिये उद्योग करना पड़ता है, उसी प्रकार यह भी बिना किसी उद्योग के नहीं मिल सकती सुख-प्राप्ति के हेतु कुछ करना पड़ेगा। वह ऐसे ही न मिल जायगा। यदि अभिलाषा मात्र ही से हर एक को इच्छित् वस्तु प्राप्त हो जाय, तो फिर संसार में किसी बात का रोना ही न रह जाय। सब कोई सब कुछ पाकर आनन्द से किलोलें करने लगें। संसार में दुःख का नाम तक न रह जाय। लोग

अनन्त काल तक स्वर्ग से भी बढ़ कर सुख और शान्ति लाभ करें। पर ईश्वर के न्याय की पुस्तक में यह नहीं लिखा है। वह उद्योगी पुरुष को उसकी इच्छित वस्तु प्रदान करता है, सब को नहीं। आलस्य को घृणा की दृष्टि से देखता है। केवल योग्य व्यक्ति ही उससे आदर पाता है। अयोग्य उसके द्वारा तिरस्कृत किया जाता है। उन अलसियों को, जो पड़े पड़े ही आकाश के तारों को तोड़ लेने की इच्छा करते हैं, वह बड़ा नीच समझता है। मेरे प्यारे भ्राताओं! आप लोगों में बहुत से ऐसे हैं, जो सुख पाने की इच्छा करते हैं, पर उस के लिये कुछ प्रयत्न नहीं करते, यह बुरा है। आप ईश्वर के दुलारे बनकर उसकी दृष्टि में ऊंचा स्थान प्राप्त करिये, जिसमें आप हीन न समझे जावें।

बिना अच्छी तरह सोचे समझे ही हमें कुछ करने न लग जाना चाहिये। किसी कार्य के करने के पूर्व हमें उस पर अच्छी तरह से विचार कर लेना चाहिये। अभी हमें यह सोचना है कि सुख का मूल कारण क्या है। उसे खोजकर तब आगे बढ़ना होगा। यदि बीच में कोई रुकावट आवेगी, तो उसे अलग हटाना होगा। यह एक साधारण सी बात है कि यदि हम कुछ करना चाहते हों और कोई उसमें किसी प्रकार की बाधा डाले, तो हमें बड़ा बुरा लगता है। और भी, यदि कोई हमसे हमारी इच्छा के विरुद्ध बल-पूर्वक कोई कार्य करावे, तो हमें बड़ा त्रास आता है। कोई हमें न छेड़े और कोई हमें कुछ करने को बाध्य न करे इसके लिये हमें

स्वतन्त्र होने की आवश्यकता है। जब हमारे सिर पर कोई दबाव डालने वाला न रह जायगा तब हम अपने मनमाने तौर पर कार्य करने लगेंगे और हमें किसी बात का कष्ट न रह जायगा। जिस बात से हम समझेंगे कि हमें सुख मिलेगा, वही हम करेंगे। किसी के आधीनस्थ हो कर रहने से हमें कभी सच्चा आनन्द नहीं प्राप्त हो सकता। पग पग पर आशंका बनी रहती है, जो कभी चित्त में शान्ति नहीं आने देती। परतन्त्रता में यदि कुछ मिलता है, तो यही कि कभी कभी हमारी पीठ ठोंक दी जाती है कि जिस में हम और ज़ोर लगा कर दूसरों के बेगारों को करें। जो बुद्धिमान होते हैं, वे ऐसे समय में लज्जा और दुःख से मर मिटते हैं। महात्मा तुलसीदास जी का माननीय और प्रामाणिक वचन है, "पराधीन सपनेहुं सुख नाहीं"। इस लिये हमें सुख पाने के हेतु स्वतन्त्र बनना चाहिये और स्वतन्त्रता प्राप्ति के निमित्त परतन्त्रता से अलग हो जाना चाहिये। आज ही हम लोग अपने भले के लिये प्रण करें कि स्वतन्त्रता-प्राप्ति के उद्योग में कुछ भी उठा न रक्खेंगे।

यह सृष्टि ईश्वर के क्रीड़ा की एक सामग्री है। वह इससे अनोखे ही प्रकार से अपना मन बहलाव करता है। उसका यह खेल विलक्षण प्रकार का है! इस पृथ्वी को विभाजित कर उसने इस पर अनेक देश स्थापित किये हैं। भिन्न भिन्न देशों में उसने भिन्न भिन्न प्रकार के लोग रखे हैं। जैसे भारत में

भारतीय, इंग्लैंड में अंग्रेज़, अमेरिका में अमेरिकन इत्यादि। इन सब को उसने स्वतन्त्रता की दौड़ के लिये खड़ा किया है। विजेता के निमित्त एक पुरस्कार रखा है। वह है, 'सुख'। जो सर्व प्रथम स्वतन्त्रता के उच्च शिखर पर पहुंच कर सच्चा गौरव प्राप्त करेगा, उसे ही यह पुरस्कार दिया जावेगा। किन्तु इस में एक शर्त है। वह यह है कि विजयी धार्मिक होना चाहिये। यह विजय धर्म पर दृढ़ रह कर प्राप्त करना चाहिये। अधर्म से जय लेने वाले को यह नहीं मिलेगा। इस समय यह दौड़ आरम्भ हो गयी है। सब कोई बड़े वेग से दौड़ रहे हैं। बेचारा भारत बीच में दब जाने के कारण पीछे रह गया है। पर एक बात ऐसी हो गयी है कि जिससे अब भी हमें निराश नहीं होना चाहिये। अन्य लोगों ने आगे बढ़ते समय अन्याय और अधर्म का विचार नहीं किया। किन्तु हम भारतीय अपने धर्म पर अटल हैं। यदि किसी को विजय-प्राप्त होगी, तो इसे ही। एक दूसरे को दबाने की चेष्टा कर रहा है, जिससे वह उठने ही न पावे। उठेगा ही नहीं, तो आगे कैसे बढ़ेगा, यही सोच कर वह अनेकों प्रकार के अनर्थ, अधर्म और अन्याय करके दूसरे को कुच-लता हुआ आगे बढ़ने का प्रयत्न कर रहा है। इससे होगा क्या ? कुछ नहीं। वह अलभ्य वस्तु नहीं मिलेगी। वह तभी मिलेगी, जब कोई धर्म-मार्ग पर स्थिर रह कर स्वतन्त्रता-शिखर पर पहुंचेगा और दूसरों को अपनी अतुल शक्ति, अपार पराक्रम और अपूर्व योग्यता दिखा कर इस प्रकार मुग्ध कर लेगा कि

जिससे वे स्वयं ही उस के आधीन हो जावेंगे और आप ही उस की श्रेष्ठता स्वीकार करने में किसी प्रकार की आना कानी नहीं करेंगे। आप विश्वास रखें, मैं निश्चय पूर्वक कह सकता हूं कि यह भारतीयों ही से हो सकेगा। यह अभी बिलकुल निर्जीव नहीं हो गया है। अभी इस में वह शक्ति विद्यमान् है कि जिसे देख कर लोग आंखें मलने लगेंगे। दम साध कर यह ऐसे ज़ोर से भागेगा कि दूसरे लोग मुंह ताकते ही रह जावेंगे। जाकर अपने निर्दिष्ट स्थान पर ही रुकेगा। इसकी उन्नति का समय आ गया है। अब देर नहीं है। इसी से मैं आप लोगों से कह रहा हूं कि सब कोई एक साथ कमर कस कर खड़े हो जाइये। उद्योग करने से मुख न मोड़िये।

अब बात यह रह गयी है कि हम स्वतन्त्रता किस प्रकार और किन उपायों से प्राप्त कर सकते हैं। इसके लिये सब से पहिले हमें स्वावलम्बी बनना चाहिये। ज़रा ज़रा सी बात के लिये हम लोग आज कल दूसरों का मुख देख रहे हैं। दूसरों की ग़ुलामी करते हैं, तब कहीं खाने को मिलता है। तन ढांकने के लिये वस्त्र की आवश्यकता पड़ती है, तब पश्चिम की ओर हाथ फैलाते हैं। भारत के बड़े बड़े होनहार बच्चों को शिक्षा दी जाती है, तो पाश्चात्य ढंग से। कितनी हीन दशा है। शीघ्र ही हम को अपनी कमज़ोरियां दूर करनी चाहियें। अपने को अपने पैरों के बल खड़ा करना चाहिये। तभी तो हम स्वतन्त्रता पूर्वक विचर सकेंगे। इसके पश्चात् हमें

दृढ़ निश्चयी होना चाहिये। जो बात हम विचारें और जिसको करने का निश्चय करलें, उसे अवश्य करें। यदि ऐसा न करेंगे, और किसी कार्य में कठिनता आने पर उसे त्याग देंगे, तो हमारा आत्म-गौरव मिट्टी में मिल जायगा। हम कौड़ी के तीन हो जावेंगे। संसार में हमारा कोई मान न करेगा और हम पशुओं से भी गये बीते होकर हल जोतने लायक़ भी न रह जावेंगे। सब के अन्त में हमें आत्म-त्यागी बनना चाहिये। केवल एक हेतु, स्वतन्त्रता-प्राप्ति को सन्मुख रख कर और सब भूल जावें। अवसर आने पर अपने प्राण तक दे देने से न डरें। बात यह है कि आत्म-त्याग करने ही से हम लोगों की आत्म-रक्षा हो सकेगी।

स्वतन्त्रता प्राप्त करना कुछ कठिन बात नहीं है। इसके लिये केवल आत्म-बल की आवश्यकता है। यदि आप में आत्म-बल है, तो आप शीघ्र ही स्वावलम्बी, दृढ़-निश्चयी और आत्म-त्यागी बन सकते हैं। आत्म-बल के ज़ोर से आप सहज ही जिस दिन और जिस समय चाहें स्वतंन्त्रता प्राप्त कर सकते हैं। बस, जब से आप समझ लें कि हम स्वतन्त्र हैं, तभी से आप स्वतन्त्र हैं। सब काम काज तब आप ही से सुचारु रूप से होने लग जावेंगे, समस्त विघ्न बाधाएं आप ही आप हट जावेंगी। कोई किसी को उसकी इच्छा के विरुद्ध दबा कर नहीं रख सकता। यदि आप सच ही स्वाधीन होना चाहते हैं, तो हो सकते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। मैं नहीं समझता कि

कोई ऐसा भी भारतीय होगा, जो स्वयं परतन्त्रता की ज़ंजीरों से जकड़ा हुआ रहकर आजन्म कष्ट झेलना चाहे और अपनी प्यारी सन्तान को भी इसी यातना में पड़े रहकर सहने के लिये छोड़ जाने की इच्छा करे। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप सब स्वतन्त्रता देवी की शान्तिमयी गोद में बैठकर उसके गले का अनन्त सुख-प्रद हार पाने को उत्सुक हैं और साथ ही पक्का भरोसा है कि आपकी उत्सुकता दूर होगी और आप अपना अभिलषित वस्तु को ग्रहण कर सच्चे आनन्द का अनुभव करेंगे।

भाषण के पूरा हो जाने पर सखाराम ने भविष्य में नगर में स्वराज्यविषयक कार्य करने के लिए एक कमेटी बनायी। उसके लिये बहुत से योग्य व्यक्ति चुने गये। तब और स्थानों की भाँति वहाँ भी राष्ट्रीय विद्यालय खोलने, खादी बनाने वाला एक बड़ा पंचायती कारख़ाना खड़ा करने, अनाथालय बनवाने और अन्य उपयोगी कार्य्य करने के प्रस्ताव रक्खे गये जो सर्व-सम्मति से स्वीकृत हुए। सखाराम ने फिर नम्र शब्दों में इनके लिये धन की आवश्यकता बतला कर लोगों से दान माँगा। बात पूरी होते न होते सावन-भादों की सी झड़ी लग गयी। जिसके पास जो था, उसने वह तुरन्त ही फेंक दिया। पुरुषों की तो बात दूर रही, स्त्रियों ने वह स्वार्थ-त्याग दिखलाया कि लोगों के छक्के छूट गए। उन्होंने अपने सब आभूषण एक एक करके उतार कर दे दिये। अनुमान करने से ज्ञात हुआ कि एक लाख और कई

हज़ार रुपयों का माल जमा हो चुका है। बहुतेरों ने भविष्य में भी बहुत कुछ देने की प्रतिज्ञा की।

उसी समय एक ऐसी घटना आ घटी कि जिससे रंग में भंग होगया। कोई उसका कुछ अर्थ ही न समझ सका कि क्या होगया। सखाराम ने अचानक अपने सन्मुख देखा कि एक बहुत ही दुबला-पतला मनुष्य खड़ा है। उसके शरीर में रक्त का नाम-निशान तक न जान पड़ता था। अस्थि-पञ्जर के ऊपर चमड़े की एक पतली सी झिल्ली दिखाई देती थी। उसकी भयानकता देख कर सखाराम डर से चिल्ला उठा। उस भयावनी मूर्त्ति ने क्षीण स्वर से कहा, "सखाराम"! तब सखाराम ने पहिचाना। उसका हृदय टुकड़े टुकड़े होगया। उस सखाराम, शब्द में असीम प्रेम और दुर्दमनीय घृणा का विचित्र प्रकार से मेल था। सखाराम की दशा बिल्कुल ही बदल गयी। कहाँ तो वह दूसरों को जोश दिला रहा था और कहां अब स्वयं मिट्टी के खिलौने के सदृश बन गया।

छब्बीसवाँ परिच्छेद।
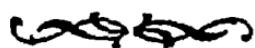
श्रीराम की चेत।

संसार में माया का अतुल प्रभाव है। किसका मन वह नहीं भुला देती? उससे सब हारे हैं। उसके फेर में पड़कर लोग दीन दुनियां की परवाह नहीं करते। श्रीराम भी अपनी कन्या की बिक्री कर मौज करने लगे। जब पास में रुपया है, तब चिन्ता काहे की? वही तो जीवन का सार है। उसके बिना कुछ नहीं हो सकता। यह जो इतनी चहल-पहल मची हुई है, सब उसी से। मान सम्भ्रम और यश की मूल माया है। यह न रहे, तो संसार और ही हो जाय। श्रीराम के घर में पहिले दास-दासियाँ नहीं थीं, अब उनकी बहुतायत हो गयी। कुत्ता पालने का शौक़ हुआ। दरवाज़े पर एक ऊंचे क़द का टाइगर बाँध लिया। टमटम पर चाहे दिन में एक ही बार चढ़ें, पर वह पूरे चौबीस घण्टे द्वार पर खड़ी रहती थी। कई बढ़िया काबुली घोड़े ख़रीद लिये। हित-मित्रों की भी कमी नहीं रही। दिन भर उनका तांता लगा रहता था। श्रीराम थे समझदार। जानते थे कि योंही धन बरबाद कर देने से फिर फ़ाक़ा करना पड़ेगा। दाने दाने को तरसना पड़ेगा। पर मन की उमंग भी

नहीं रोकना चाहते थे। अब पास में साधन है, तब क्यों न वाहवाही लूट लूं। तब क्या किया जाय? श्रीराम ने सम्पत्ति को बढ़ाने का उद्योग किया। व्यवसाय करना आरम्भ कर दिया। जिसके पास होता है, परमात्मा उसे और भी देता है। बहुत लाभ हुआ। अर्थ की दिनों दिन उन्नति होती गयी। जितना ख़र्च नहीं होता था, उतना ढेर लग जाता था। पैसा बढ़ने पर दूर की सूझी। गांवों की ख़रीद होने लगी। एक के पश्चात् दूसरा, दूसरे के पश्चात् तीसरा, इसी प्रकार कई गाँव अधिकार में कर लिये। धीरे धीरे श्रीराम एक छोटे-मोटे ज़मींदार बन गये।

सन्ध्या के चार बजे थे। मज़दूरिन बर्तन मांज रही थी। श्रीराम किसी कार्य वश उधर आ निकले। महरिन ने पूछा, काहे मालिक, आज कोई मेहमान आये थे क्या? बहुत बासन निकरेन हैं।

श्रीराम—"हां, आज नाग पञ्चमी है न। मैंने अपने मित्रों का न्योता किया था। तुम्हें भी कुछ चाहिये?"

महरिन उदासी दिखाकर बोली, "ना मालिक, मैं बहुत पा चुकी। जब मालकिन थीं, तब ऐसा ऐसा मेरा नित्य ही न्योता हुआ करता था। नित्य वे मुझे कोई न कोई चीज़ देती थीं। कभी नागा न जाता था। अब तो घर ही कुछ और दिखाई देता है। रुपया-पैसा बढ़ गया है, तो क्या हुआ? बिना उनके रंगत नहीं रह गयी है"।

कहते कहते उसकी आंख में कहीं से एक छोटा कीड़ा आकर घुस गया। दो तीन बार पलक झटकने से निकल गया। आंख मलते हुए वह बोली, "मरे! इनके मारे तो और भी हैरान हूं"।

श्रीराम—"क्या हुआ"?

मजदूरिन—"कुछ नहीं, भुनगा रहा कि क्या; आंख में चला गया था"।

श्रीराम—"निकल गया?"

वह कुछ याद आ जाने से सिर ऊपर करके श्रीराम की ओर ताकती हुई बोली, "और हां मालिक, नाग पञ्चमी हो गई। आपने बाई को घर नहीं बुलवाया। मित्रों का नेवता कर दिया। उनकी ख़बर तक न ली"।

श्रीराम सचमुच एक प्रकार से रुपिया को भूल ही गये थे। एकाएक उसका ध्यान आया। मन में बहुत पछताये। मैं कैसा हूं? विवाह किये लगभग एक साल हो गया, एक बार भी उसे घर न लाया। क्रमशः चिन्ता बढ़ी। वह कैसी होगी? यहां उससे मैं दिन में दस बार खाने के लिए पूछता था, वहां कौन इतनी परवाह करता होगा? बेचारी के दिन बड़े कष्ट से बीतते होंगे। मेरी बहुत याद करती होगी। रोज़ मेरे आने की राह देखती होगी। अब आये, अब आये। कुछ ख़बर न पाकर उसे कितना दुःख होता होगा? अपनी लड़की रुपिया का सुन्दर मुख श्रीराम की आंखों के सामने फिर गया। उसकी

का गांव निकट आया। प्रसन्न चित्त से उसमें प्रवेश किया। हठात् कामता ने कहा, "सरकार उधर देखिये। धुआँ मँडरा रहा है। आकाश में उजाला फैला है। जान पड़ता है, कोई घर जल रहा है"।

श्रीराम ने देखा। अचानक आशङ्का ने घर दबाया। हृदय धड़कने लगा। कहीं उन्हीं का घर तो नहीं है। जैसे तैसे पास पहुंचे। अरे! सर्वनाश हो गया। सारा मकान लहरें मारकर जल रहा था। ऊँची ऊँची लहरें उठ रही थीं। श्रीराम की संज्ञा लुप्त होगयी। यह तो बहुत बुरा हुआ। सामने खूब भीड़ लगी थी। एक से पूछा, "भाई, घर के लोग कहां हैं? बाहर तो निकल आये हैं न?" उसने एक बार श्रीराम की ओर देखा, फिर बिना उत्तर दिये ही दूसरी ओर चला गया। दूसरे से पूछा। उसने भी ध्यान नहीं दिया। बड़ी मुश्किल की बात है। कुछ समझ में नहीं आता। क्या करूं? मकान तो देख रहा हूं, उन्हां का जल रहा है। पर कुछ ठीक पता नहीं मिलता। उसी समय उन्होंने रुपिया को चिल्लाते सुना, "बचाओ"। भाला सा लगा। हृदयविदारक करुणा-क्रन्दन था। नौकरों की ओर घूमकर श्रीराम ने घबराये हुए स्वर से कहा, "धन्नू और कामता! जिस तरह हो सके, मेरी रूपा की रक्षा करो। मुंह-मांगा इनाम दूंगा। वे भला क्या करते? स्वयं ही भयभीत थे। साहस नहीं हुआ। दब के रह गये। अपनी जान होमने कौन जाय? वहां तो लेने के देने पड़ जायँगे। श्रीराम

की आशा जाती रही । चेतना-शून्य होकर एक ओर को लुढ़क गये। कामताने फुर्ती से घोड़े पर से कूद कर सम्हाल लिया। घन्नू भी आकर उनको होश में लाने के प्रयत्न में कामता की सहायता करने लगा।

उधर रुपिया भुनी जा रही थी। जलती हुई चारों ओर चक्कर लगा रही थी। दौड़ने से लपटें उड़ कर उसे और भी झुलसाये डालती थीं। कठिन यन्त्रणा थी। रुपिया बड़ी बुद्धमती थी। मौके पर उसे कोई न कोई उपाय सूझ जाता था, इस समय भी वह नहीं चूकी। दैव ने उसकी सहायता की। झपट कर उसने पलंग पर पड़ा हुआ मोटा कम्बल उठा लिया जल्दी से उसे अपने ऊपर लपेट लिया। साथ में एक चादर भी आगयी। वह भभक कर जलने लगी। रुपिया ने उसे दूर फेंका। कम्बल के भीतर आग बुझ गयी थी। उसे भी अलग कर दिया। फिर बिजली के समान द्रुत गति से उछल कर खिड़की के पास पहुंची। और बाहर हवा में बहुत ऊपर कूद गयी। खिड़की के पास एक इमली का वृक्ष था। रुपिया की पकड़ में एक टहनी आगयी। बोझ से वह नीचे झुकी। उसने झट उसे छोड़कर दूसरी पकड़ ली। उसके बाद तीसरी, तब चौथी पर झूल गयी। अन्त में सब से निचली टहनी के सहारे धरती पर आ रही।

श्रीराम घटना स्थल पर पहुंचने पर अपने दोनों नौकरों के साथ मकान के बग़ल की तरफ़ खड़े हुए थे। कामता की दृष्टि

संयोग से फिरी। उसने ऊपर खिड़की से कोई चीज़ गिरते देख ली। घन्नू को साथ लेकर उधर लपका। वृक्ष के ले तआने पर दोनों इधर-उधर आंखें फाड़कर देखने लगे।

रुपिया ने क्षीण स्वर से कहा—"ऊपर एक आदमी और है। उसको बचाओ"।

पहिचानने में देर नहीं लगी। हर्ष से दोनों चिल्ला उठे, "रूपा"।

रुपिया ने शक्ति समेट कर कुछ तीव्र स्वर से कहा, "ऊपर एक आदमी जला जा रहा है। मुझे बचाने आया था। पहिले उसकी रक्षा करो। एक आदमी इस इमली के पेड़ पर चढ़ जाओ। तब ऊँची टहनी पर पहुंचो। वहां से खिड़की से उतर जाओ। आते समय नीचे रस्सी लगा कर उतर पड़ना"।

उसकी आंखें अंगारे के समान जल रही थीं। आज्ञा टालने की हिम्मत नहीं पड़ी। घन्नू जाने को तय्यार होगया। कामता ने कहा, "मुझे अपनी पगड़ी दो। मैं जाता हूं"।

घन्नू ने पगड़ी देदी। कामता ने उसे कमर से लपेट लिया। बन्दर की तरह चपलता से वह पेड़ पर चढ़ गया। कूदते-फाँदते ख़ूब ऊपर पहुंचा। हाथ बढ़ाकर एक पतली सी टहनी से झूल गया। काम बड़ा ख़तरनाक था। ज़रा भी चूकने से दम निकल जाता। पर जोश के कारण कामता नहीं दहला। नीचे देखा। रुपिया की आंखें चमक रही थीं। उत्साह दूना होगया। टहनी वेग से नीचे झुकी। ठीक खिड़की पर जाकर

रुक गयी। कामता सहज ही भीतर जा पहुंचा। अग्नि की ओर उसने ध्यान नहीं दिया। चौखट से पगड़ी बांधकर नीचे लटका दी। फिर वह अमरनाथ के पास पहुंचा। उसके बेहोश शरीर को उठाकर जल्दी से पगड़ी के सहारे सरसराता हुआ निर्विघ्न नीचे उतर पड़ा।

रुपिया की देह बहुत जल गयी थी। शक्तिहीन शरीर से उसने परिश्रम भी बहुत किया था बेहोश होकर गिर पड़ा।

कामता अमरनाथ को और बन्नू रुपिया को लिये हुए बाग़ की दीवाल लांघ कर श्रीराम के पास पहुंचे। उनकी आंखें खुल गयी थीं, पर अच्छी तरह चैतन्यता नहीं आयी थी। भौंचक से यहां-वहां देख रहे थे। रुपिया को देखते ही हाथी के समान बल आगया। दौड़कर उसे गोद में उठा लिया।

और अधिक ठहरना उचित न जान श्रीराम घर की ओर चल दिये। रुपिया इन्हीं के पास थी और कामता अमरनाथ को लिये था। विश्राम के स्थान पर पहुंचना कौन नहीं चाहता? घोड़े मन लगाकर सरपट भाग रहे थे।

सत्ताईसवां परिच्छेद।

दीनानाथ की विरक्ति।

दीनानाथ ने एक क़हक़हा लगाकर कहा, चन्द्र ! तुम मुझे देखकर हंसते हो। हंसो खूब हंसो। मैं भी हंसता हूं। हा! हा!! हा!!! तुम समझते होगे, मैं चिढ़ूंगा। चिढ़ूंगा क्यों? ख़ूब मनमाना हंसो। दिल खोलकर हंसो तुम्हारे हंसने की मैं क्या परवाह करता हूं? जितना हंसते बने, हंसो तुम्हारी समझ में मेरा सब स्वाहा होगया है, इससे मैं दुःखित हूं। मेरे दुःख को बढ़ाने के लिये ही तुम हंसते हो। हँसते रहो मैं दुःखित नहीं हूं सब चला गया। जाने दो। एक दिन तो जाता ही। आज ही सही। इसमें दुःख करने की कौनसी बात है? संसार में इतने आये, ख़ाली हाथ अकेले चले गये। यही मेरा भी हाल होगा। फिर मैं पार्थिव वस्तुओं के लिये दुःख क्यों करने लगा? मैं प्रसन्न हूं; बहुत प्रसन्न हूं। जाल से पिंड छूटा। शैतानों से अलग होगया। इससे अधिक सुख की बात कौनसी होगी? जितना आनन्द मुझे आज है, इतना कभी नहीं हुआ। धन, दौलत, स्त्री, भाई कुछ नहीं, सब कष्टदायक हैं। जी जलानेवाले हैं। कौन किसका होता है? कोई किसी के काम नहीं आता।

सब अपने अपने मतलब के हैं। धन, धन भी मिथ्या है। कोरा जंजाल है। इससे कुछ लाभ नहीं। झूठा बड़प्पन मिलता है, जो अन्त में दुःख का मूल हो जाता है। अच्छा हुआ, मेरा सब से बन्धन टूट गया। अच्छा मान लिया जाय कि सम्पत्ति और सम्बन्धी काम के होते हैं। नहीं, नहीं, मान कैसे लूं? सब तो देख चुका हूं! धन विपत्ति मोल लेने का साधन है। विवाह किया; घर में राक्षसी आई। भाई ने, नहीं पिशाच ने, घर में धन रहने से मौज से निश्चिंत बैठे बैठे मेरी गर्दन पर छुरी चला दी। अब किसी पर विश्वास नहीं है। कोई आकाश से उतर कर आवे और मुझे समझावे, तो भी मैं.........। अरे! हां चन्द्र! मैं तुमसे बात करता था। दूसरी ओर ध्यान खिंच गया। क्षमा करो। क्या? कहता था तुम हंसते हो हंसो। अपनी उज्ज्वल चांदनी चारों ओर फैला कर ख़ूब हंसो। आप हंसो और दूसरों को भी हंसाओ। हंसने में ही सार है। इस दुःखमय संसार में जितना समय हंसने में कटे, वही सार्थक है। रोने धोने में क्या रक्खा है? रोना तो मूर्खों का काम है। व्यर्थ ही मन को कष्ट पहुंचाना महा अनाड़ीपन है। चन्द्र! तुम हंसा ही करते हो। बड़े अच्छे हो। आज से मैं तुम्हें अपना मित्र मानता हूं। तुमसे अधिक काम नहीं लूंगा। डरो मत। बस, नित्य मुझे अपनी शीतल किरणों से स्नान कराया करो, अपनी सुधा-सिंचित धारा से मुझे सींचा करो, ख़ूब हंसा करो और मुझे हंसाया करो मेरी एकमात्र यही प्रार्थना है कि मेरे मन में कभी शोक प्रवेश

मत होने दो। इतना ही और कुछ नहीं। क्या मित्रता के अनुरोध से इतना भी न कर सकोगे? अवश्य करोगे। करोगे क्यों नहीं! इसके बदले में मैं तुम्हारा कीर्त्ति-गान किया करूंगा। अहा, कैसा सुन्दर रूप है। कैसा उज्ज्वल मुखड़ा है, कितना मनोरम और नेत्र-सुखदायक है। हे गगन-चारी! आकाश मंडल में विचरते हुए तुम बड़े भले लगते हो। हे सुधांशु! तुम्हारी मुस्कान अत्यन्त मधुर है। चारों ओर अमृत छिड़का देती है। व्योम-वारिधि में श्वेत सरोज के सदृश तुम्हारी अनुपम शोभा है। आज की सुरम्य वक्रता अवलोकन करने से बोध होता है, मानो तुम किसी मोहिनी के पूर्णविकसित वक्षस्थल के सुन्दर आभूषण हो। हे कलावान् सोम! हे सुधा की वृष्टि करने वाले सुधाकर! तुम्हारी महिमा अमित है। सम्पूर्ण जगत को शान्ति प्रदान करने वाली निशा के तुम स्वामी हो। उसकी शोभा के सार हो। तुम धन्य हो।"

इतने में एक उल्लू सामने आया और अपने कर्कश शब्द से दसों दिशायें गुंजाने लगा दीनानाथ ने एक ढेला लेकर उसकी ओर फेंका। वह भागा। दूसरा ढेला उठाकर वे उसके पीछे दौड़े। चिल्ला कर कहा, "बदमाश! तू मेरे पास क्या करने आता है? क्या तू भी मुझे खिजाना चाहता है? आ, देखूं। भागा जाता है। भागता कहाँ है। ठहर जा।" कुछ सोचा। अचानक उन्होंने ढेला दूसरी ओर फेंककर कहा, "ओह! मैं भूलता हूं। भूल रहा हूं। तू मुझसे मित्रता करने आया था। अब

समझ गया। भूल हुई। क्षमा कर। आ, मुझे तेरी मित्रता स्वीकार है। तुझे मैं हृदय से चाहता हूं। आ, मेरे मित्र! आ!! जान पड़ता है दुनियाँ ने तुझे भी धोखा दिया है। उसके निर्दय और कठोर पंजे से तू भी सताया जा चुका है। अब तू उसके पापाचारों से घृणा करता है। उसकी कुटिलता नहीं देखना चाहता इसी से तू दिन भर आखें बन्द किये रहता है। रातमें सुनसान में विचरता है। तेरी यह नीति मैं पसन्द करता हूं। सत्य ही दुनियां का घृणित मुख देखने योग्य नहीं है और न उसे अपना ही मुख दिखाना उचित है। प्रिय उलूक! आओ। मुझे अपना मित्र बनाओ मैं तुम्हारे सदृश सत्यप्रिय मित्र की खोज में हूं। दुनियां अन्धी है। उसमें रहने वाले व्यक्ति अन्धे हैं। तुझे एक मूर्ख पक्षी समझ लिया है। अपनी जड़ता के सन्मुख दूसरे की बुद्धिमानी उन्हें मूर्खता दिखलायी देती है। आजा उलूक! कुटिल संसार तुझे कैसा ही क्यों न समझे। मैं तुझे प्यार करता हूं। तेरे गुणों का समुचित आदर करना कोई नहीं जानता। सब तेरी अवहेलना करते हैं। मैं तेरा आदर करता हूं। तुझ पर प्रेम करता हूं ईश्वर ने मेरी आँखें खोल दी हैं। सत्य को पहिचानने की शक्ति मुझ में आगयी है।"

सवेरे तक दीनानाथ जिधर पैर उठे, उधर ही चलते गये। चलते चलते गंगा के समीप आये। भक्ति से मस्तक झुका कर प्रणाम किया। धीरे धीरे पानी में घुसते हुए कहने लगे, "गंगे! पतित-पावनी गंगे! तेरा नाम पतित-पावनी क्यों रक्खा गया

है ? सारा संसार पतितों से भरा पड़ा है। उनकी संख्या दिनों दिन बढ़ती जाती है। वे पवित्र क्यों नहीं होते ? तरते क्यों नहीं ? क्या तेरी इतनी महिमा व्यर्थ ही गायी जाती है ? कदाचित् कलियुग के प्रभाव से तेरी शक्ति क्षीण हो गयी है। यही होगा। तू तो अज्ञान नहीं है। फिर जान-बूझ कर इस कलियुगी संसार में क्यों आयी। क्या तुझे अपनी अप्रतिष्ठा कराना ही अभीष्ट था। हा! गंगे!! पतित-पावनी गंगे! तू सीधे स्वर्ग में सिधारने की सुगम और सुलभ सोपान है। फिर भी तेरा इतना अनादर ? शोक! महाशोक!!"

दीनानाथ आगे बढ़ते ही गये। छाती तक पानी आ गया, तो भी नहीं रुके। और एक पग आगे रखने पर गले तक पानी आ गया। मुख से बराबर अविराम ध्वनि निकल रही थी, "दुनियां कलियुगी है। दुनियां किसी का आदर करना नहीं जानती। तेरी भी उसने अवहेलना की। देख, स्मरण रख। कृतघ्नों को भूल नहीं जाना। उँह! मैं भी कैसा मूर्ख हूं। व्यर्थ ही क्या बक रहा हूं ? सब वृथा होगा। गंगे तू तो किसी से बदला लेना जानती ही नहीं। हर समय भलाई में ही तत्पर रहती है। तेरा नाम पतित-पावनी है।"

अचानक एक बड़ी लहर आयी। दीनानाथ के पैर उठ गये। वे बह चले। उस समय भी अस्पष्ट शब्द कर्णगोचर हो रहे थे, "गंगे! पतित-पावनी गंगे!.........पाव..........नी.........!"

अट्ठाईसवां परिच्छेद ।

पुनर्जीवन ।

पं. बद्री महाराज का सबेरे चार बजे उठ कर गंगा-स्नान करने का नैतिक नियम था। यह नियम कभी भंग नहोने पाता था। जाड़ा, गर्मी, बरसात कोई ऋतु क्यों न हो, वे नित्य गंगा स्नान करते थे। और कोई बात चाहे करने से रह जाय, पर इसमें चूक न होने पाती थी। एक दिन नियमानुसार लोटा और धोती लेकर दरवाज़े के पास आये, तो उसे बन्द पाया। किसी ने बाहर की सांकल चढ़ा दी थी। किसने यह शरारत की। झल्ला उठे। लगे बड़बड़ाने, "अरे, तेरा सत्यानाश हो जाय, किसने दरवाज़ा बन्द कर दिया है ?" ज़ोर ज़ोर से चिल्लाने लगे। "कोई है भाई। दरवाज़ा खोलो। किसी दुष्ट ने सांकल चढ़ा दी है। जान पाऊँ, तो बदमाश को कच्चा ही चबा जाऊँ।"

पड़ोस में एक दूसरा राम सहाय नाम करके पंडा रहता था चिल्लाहट सुन कर आंखें मलीं। उठ कर बाहर आया। दरवाज़ा खोल कर बोला, "क्या है हो ? शुरू में सबेरे सबेरे आसमान सिर पर उठाये लेते हो। सनक तो नहीं गये ?

बद्री महाराज ने रामसहाय को देखा तो और भी भभूके

हो गये। क्रोध से कहा, "धत् तेरा भला हो जाय। तड़के ही अपनी भौंडी सूरत यहां क्यों लाया। तेरा काना मुंह देखने से अच्छा तो यही होता कि मैं आज गंगा-स्नान करने ही न जाता।"

रामसहाय को भी ताव आ गया। आग-बबूला हो कर बोला, "अच्छे का ज़माना नहीं है। होम करते हाथ जलता है। अभी पड़े पड़े घंटों चिल्लाते रहते, तो भला था। मैंने दरवाज़ा खोल दिया, तो बहुत बुरा किया।"

बद्री महाराज विरक्ति से बोले, "जा, जा, दूर हो। अब तो जो होना होगा, होगा। अपशंकुन हो ही गया है। परमात्मा जाने, कैसी बीतेगी।"

रामसहाय ने कहा, "तुमने भी तो आज इतने सवेरे गाली दी है। क्या जाने, कौन सी आफ़त आने वाली है।

बद्री महाराज झगड़े में वृथा समय खोना अच्छा न समझ कोठरी में ताला लगा गंगा की ओर चल दिये। ठंडी ठंडी हवा लगने से चित्त कुछ प्रसन्न हुआ। पर आशंका बनी ही रही। हे माता! कुशल करना। जल्दी जल्दी किनारे पहुंचे। नित्य क्रिया से निवृत हो कुल्ला-दतून किया। फिर धड़ाम से गंगा में कूद पड़े। देह मलते-मलते कई नदियों के नाम गिन डाले। मुंह से लगातार आवाज़ निकलने लगी, "गंगा, यमुना, गोदावरी, कृष्णा, महानदी, ब्रह्मपुत्रा, सिन्धु, गोमती"...
......गंगा, यमुना, गोदावरी,............। गंगा कर गौर गरीबन पर। गंगा, शिव-प्यारी, हर-गंगा, गंगे! हर...... ।"

पंडा जी गंगा-स्नान करने में ढीठ हो गये थे। पर आज, न जाने क्यों, कुछ भय मालूम हुआ। मन में घबराहट उठी। स्तुति करना भूल कर सोचने लगे, "कानी आंख अपना गुण ज़रूर दिखावेगी। अच्छा है, जो होना हो, यहीं गंगा में हो जाय मगर खा जाय, चाहे घड़ियाल निगल जाय। गंगा के ही गर्भ में जाऊँगा।" महाराज आज साहस कर दूर तक तैर गये। देर तक पानी में सिर डुबाये रखते थे। जब बहुत अधिक भय हो जाता है, तब साहस भी अधिकता से आ जाती है। तैरते तैरते वे बीच धार में पहुंचे। अचानक कुछ दूरी पर कोई सफ़ेद चीज़ उतराती दिखायी दी। पास पहुंचने पर जाना कि एक आदमी था। पहिले तो डर लगा। मुर्दे से दूर ही रहना अच्छा है। फिर उसके कुछ अंग हिलते देख कर समझ लिया कि यह अभी मरा नहीं है। छाती पर हाथ रखा। धड़कन थी। साहस हुआ। पकड़ कर तेज़ी से तैरते हुए घाट पर ले आये। देर तक पानी में पड़ी रहने से देह अकड़ गयी थी। एक कोने में प्राण टिके थे। कुछ देर और न निकाला जाता, तो शरीर निर्जीव हो जाता। कौन आफ़त का मारा है? कब से गंगा में बह रहा है? उजाला छिटक रहा था। पंडा जी ने देखा, कोई धनी आदमी है। कपड़े लत्ते साफ़ हैं। दो-चार सोने की चीज़ें भी पहिने है। चलो अच्छा हुआ, निकाल लाया। बच जायगा। पुण्य तो होगा ही, कुछ न कुछ आमदनी भी ऊपर से हो जायगी।

महाराज ठंड से ठिठुरी हुई देह को घर ले आये। बहुत सेवा

सुश्रूषा की। कई तरह की गर्म दवाइयां पिलायीं। घन्टों तक रुई गर्म करके सेंका। दोपहर के पश्चात् अच्छे होने के कुछ लक्षण दिखायी दिये। पंडा जी-जान से जुट गये। शरीर-तोड़ परिश्रम किया। संध्या होते होते दीनानाथ ने आंखें खोल दीं। आश्चर्य से चारों ओर देखकर पूछा, "मैं कहाँ हूं"?

पंडा जी ने कहा, "घबराइए नहीं। समझ लीजिए, आप अपने घर ही में हैं। आपको अच्छा देख मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूं"।

दीनानाथ ने पूछा, "मुझे क्या होगया था"?

पंडा—मैंने आपको आज सवेरे गंगा में बहते हुए पाया है।

दीनानाथ बड़ी देर तक चिन्ता करते रहे। गंगा में कैसे आ रहा? स्मरण-शक्ति ने सहायता न दी। कुछ देर बाद सखाराम और रुपिया की कृतघ्नता की बात याद हो आयी। मुख पर घृणा फैल गयी मकान के जलने का दृश्य भी सामने आया। अच्छा हुआ जल गया। पापियों की लीला समाप्त हो गयी। पृथ्वी उनके भार से दबी जाती थी। गंगा में आने की बात फिर भी अंधेरे में रही। बहुत कुछ सोचा पर्दा नहीं हटा।

दीनानाथ ने पिछली चिन्ताओं को हटाकर पूंछा, "मैं किस गांव में हूं"?

पंडा—"आप कानपुर शहर में हैं। किसी बात की कमी नहीं रहेगी। मैं हर समय सेवा में उपस्थित रहूंगा। आप निश्चिन्त रहिये"।

दीनानाथ ने विरक्ति दिखाकर कहा । "मैं कानपुर में नहीं रहना चाहता । क्या तुम मुझे किसी और दूसरी जगह पहुंचाने का प्रबन्ध कर सकते हो" ?

पंडा—"चार छै दिन में मैं प्रयागराज जाने वाला हूं । कहिये तो वहां आपको ले चलूं" ।

दीनानाथ—"कल ही यहां से चल दो ।"

पंडा—अच्छी बात हैं । मुझे जाना है ही । जैसे चार दिन बाद । वैसे कल ही चला चलूंगा ।

दीनानाथ—मेरे साथ रहने से तुम्हें कष्ट अवश्य होगा । पर यदि वह रुपये से पूरा हो सकेगा । तो तुम्हें अधिक अड़चन नहीं उठानी पड़ेगी । मैं भर दूंगा ।

पंडा महाराज ने दीनानाथ के गीले वस्त्र उतारते समय उनके शरीर पर से सोने के आभूषण भी अलग कर दिये थे । अब उनको याद आया । तुरन्त लाकर दीनानाथ के सामने रख दिये । विनीत स्वर से कहा, "ये आपकी चीजें हैं । सम्हाल लीजिये" ।

दीनानाथ उसकी ईमानदारी पर मुग्ध हो गये । बोले, "मैं तुम्हारी सत्यता और दया से अत्यन्त प्रसन्न हूं । तुम चाहते तो मेरा सब लेकर गंगा में ही पड़ा रहने देते । पर तुमने यह नहीं किया । मैं तुम्हारा बड़ा कृतज्ञ हूं । इन्हें तुम्हीं ले लो" ।

पंडा—"मैं आपको बचा सका इसी में अपना अहोभाग्य समझता हूं । धन का इतना अधिक भूखा नहीं हूं ।

दीनानाथ—कुछ भी हो, इन्हें अपने ही पास रहने दो। कम से कम इसलिए कि जिसमें मैं तुम्हें भार स्वरूप न जान पड़ूं। यदि नहीं लोगे, तो मुझे तुम्हारी दया ग्रहण करने में संकोच होगा। इस समय भी तुमने मेरी कुछ कम भलाई नहीं की है। जीवन-दान दिया है। उसके आगे ये तुच्छ हैं।

कुछ और अनुरोध करने पर पंडा जी ने आभूषण रख लिये। उनमें हीरे की एक बहु मूल्य अँगूठी थी।

पंडा जी को उस दिन काने का मुंह देखने के कारण सन्ध्या के पश्चात् भोजन करने की नौबत आयी थी। किन्तु इससे उनको इतना अधिक शोक नहीं हुआ।

उन्तीसवां परिच्छेद ।

रुपिया का पश्चाताप ।

दो महीने तक लगातार दवा होती रही। अमरनाथ अधिक नहीं जला था। वह जल्दी अच्छा हो गया। रुपिया की अवस्था भयानक हो उठी थी। उसे स्वास्थ्य लाभ करने में विलम्ब लगा। फिर भी उन दो महीनों के प्रयत्न से वह उठ बैठ सकने योग्य हो-गयी। रुपिया के तमाम शरीर में दाग पड़ गये थे। स्त्री-सुलभ कोमलता रहने पर भी सुन्दर मुख भयानक हो उठा था। सिर के बाल बिलकुल जल गये थे। इससे भयङ्करता और भी बढ़ गयी थी। कोई देखने आता, तो डर से कांप जाता था। उसमें बिलकुल परिवर्तन हो गया था। ईश्वर की कृपा से आंखें वैसी ही थीं। उनमें उसी प्रकार की उज्ज्वलता थी। पहिले के सदृश ज्योति निकलती थी। बड़ी बड़ी चमकदार आंखें देखने ही से लोग उसे पहिचान सकते थे। और सब बदल गया था। और एक महीना बीता। उसमें चलने-फिरने की शक्ति आगयी। एक दिन रुपिया को बहुत कुछ स्वस्थ्य देखकर श्रीराम को घर में अग्नि लगने का कारण जानने की इच्छा हुई। प्यार से पास बैठकर कहा, "अब तो तुम अच्छी हो गयी हो"?

रुपिया—"हां, अब अच्छी हूं"।

श्रीराम—"घर में आग कैसे लग गयी थी? मुझे अभी तक नहीं मालूम हुआ। अमरनाथ से पूंछा; उन्हें भी कुछ नहीं मालूम"।

रुपिया की आँखों में आँसू भर आये। सविस्तर हाल कहने में वह सकुचायी। मौन रह गयी।

श्रीराम ने रुपिया को अनमनी देखकर कहा—"दुःख मत करो बेटी! जो कुछ होना था, वह हो ही गया। अब क्यों मन में कष्ट करती हो"?

जो कुछ होना था, वह सब हो चुका अथवा अभी कुछ और होना अवशेष है, यह रुपिया ही भली भांति समझती थी। शान्ति कैसे पाती। फूट फूटकर रोने लगी। उसके रोने से श्रीराम का भी धैर्य्य टूटने लगा। आँखों की कोर में पानी आगया। कहा, "यदि तुम्हें व्यथा पहुंचती है, तो कुछ मत कहो। मैं नहीं सुनना चाहता"।

रुपिया ने आंसू पोंछकर कहा, "नहीं, कुछ ऐसी बात नहीं है। अधिक मैं भी नहीं जानती। टेबिल पर लैम्प रखा था। कुछ हो गया होगा गिर पड़ा। सब जगह तेल छिटक गया। आग लग गयी। उनका कुछ पता चला?

श्रीराम—दीनानाथ की मैंने बहुत खोज-ढूंढ़ की। कुछ पता नहीं लगा। जाने कहां, ग़ायब होगये हैं। हां, जिस सयम आग

लगी थी, तुम क्या करती थीं? भाग कर बाहर क्यों न चली आयीं?

रुपिया ने बात छिपानी चाही। पर कृत-कार्य्य न हो सकी। उसके मुँह से सच बात निकल ही पड़ी। पिता को धोखा देने का उसे साहस नहीं हुआ। कड़ा हृदय करके कहा, "उस समय मैं बेहोश थी"।

श्रीराम--बेहोश? अरे! बेहोश कैसे होगयी थीं?

रुपिया तब पिता के पैरों पर गिर पड़ी। आंसुओं की धार से धरती भिगो दी। श्रीराम के हृदय में खलबली मचगयी। रुपया ने कहा, "पिता, मुझे क्षमा करिये।"

श्रीराम ने उसे उठाकर बैठाया। पुचकार कर कहा, "क्या बात है? इस तरह क्यों करती हो? तुम्हारे रोने से मेरा भी हृदय फटा जाता है।

रुपिया साहस की पराकाष्ठा तक पहुंची। मानों कलेजा निकालकर सामने रख दिया। धीरे से अस्पष्ट शब्दों में बोली, "वे मुझ पर सन्देह करते थे।"

श्रीराम—"क्या कहा? संदेह? कैसा सन्देह?

रुपिया—उन्होंने एक बार मुझपर संदेह किया था। क्या जाने, अब भी उनका हृदय वैसा ही है या बदल गया है।

श्रीराम विचलित हो उठे। अचानक जैसे सिर पर आसमान फट कर गिर पड़ा हो। उठ कर कमरे में टहलने लगे। हृदय की विचित्र दशा हो गयी। पर मुँह से कोई शब्द नहीं निकला।

आखों से चिनगारियां निकल रही थीं। दांत जकड़े हुए थे। रुपिया हाथों से मुंह छिपा कर कह रही थी, "पिता जी मुझे क्षमा करिये। मैं सत्य कहती हूं। मैं अपराधिनी अवश्य हूं, पर अविश्वासिनी नहीं हूं। मैंने अपना धर्म नहीं खोया। अपराध किया था। उसका फल मिल गया है। अब मैं दया की पात्री हूं।

श्रीराम टहलते टहलते रुपिया के पास आये। उन्होंने अपने को शान्त कर लिया था। उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए प्रेम से कहा, "बेटी? दुःख मत करो। मैं तुम्हारा वही पिता हूं। आंखें खोल कर देखो। मैं बदला नहीं हूं। तुमको उसी तरह प्यार करता हूं। तुम्हारे लिए मेरे हृदय में वही दया, वही सहानुभूति और वही स्निग्ध प्रेम अब भी है। जिस प्रकार पहिले तुम्हारी इच्छाएं पूर्ण किया करता था, उसी प्रकार अब भी करूंगा। यदि कुछ कहना हो तो कहो तुम्हारे मन में इस समय बहुत कष्ट हो रहा है। उसके दूर करने के लिये मैं कुछ न उठा रखूंगा। बोलो क्या चाहती हो?"

रुपिया—मेरा मन अब संसार से विरक्त हो गया है। मेरी इच्छा है कि वैरागिनी बनकर देश-भ्रमण करूं।"

श्रीराम—"अच्छा है। पर मैं तुम्हारे बिना कैसे रह सकता हूं? विशेष कर जब तुम यहां वहां घूमती फिरोगी, तब मुझसे एक स्थान पर बैठे कैसे रहा जायगा। मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगा।

दूसरे दिन उस गांव से तीन विरक्त व्यक्ति निकले। शरीर पर गेरुए कपड़े थे। हाथ में कमण्डल और चिमटा था। श्रीराम ने अमरनाथ से बहुतेरा कहा, "तुम लौट जाओ। आनन्द से घर में रहो। रुपये पैसे की चिन्ता मत करो। मुझसे मन माना धन ले लो। हमारे फूटे भाग्य के पीछे तुम क्यों तपस्या करोगे!" अमरनाथ ने दृढ़ता से कहा, "परमात्मा ने जब एक बार आपका साथ दे दिया है, तब वह जल्दी नहीं छूटेगा। मेरा बैठा ही कौन है! किसके लिए झंझट में पड़ूं! परमात्मा का नाम लेकर सूखी रूखी दो रोटियां खाने में ही आनन्द समझूंगा।"

तीसवां परिच्छेद।

अकस्मात मिलन।

डा जी ने जब दीनानाथ से हीरे की अंगूठी का मूल्य पाँच हज़ार रुपया सुना, तब उन्हें बड़ा कौतूहल हुआ। एक पत्थर इतना बहुमूल्य हो सकता है, इस पर उन्हें सहसा विश्वास नहीं आया। सुना था कि हीरा बहुत क़ीमती होता है, पर देखा आज तक न था। क्या यही पत्थर पांच हज़ार रुपये का होगा? निश्चय किया कि किसी जानकार से इसकी परख करवाना चाहिये। एक दिन दूसरे कामों से छुट्टी पाकर खोजते हुए एक जौहरी की दूकान पर पहुंचे। अंगूठी उस के हाथ में रख कर बोले, "ज़रा इसकी क़ीमत तो आँकना भाई कितने की होगी?"

जौहरी ने देर तक अंगूठी को देखा। फिर महाजन के मुख की ओर दृष्टि फेरी। अंगूठी जैसी क़ीमती है, वैसा चेहरा तो नहीं दिखाता। ज़रूर इसमें कुछ कारसाज़ी है। हो न हो, यह चोरी की है। कुछ सोच कर जौहरी बोला, "आप इसे बेचना चाहते हैं क्या?"

पंडा जी उसे बेचने नहीं गये थे। यह प्रश्न सुन कर रुकते हुए कहा, "यदि ठीक क़ीमत मिलेगी और मुझे घाटा नहीं होगा, तो बेच देने में क्या हर्ज है?"

जौहरी ने पंडा जी की सूरत-शक्ल देखी, तो सन्देह ने जड़ पकड़ लिया। चेहरे से बुद्धिमानी नहीं टपकती। बिलकुल गंवार जान पड़ता है। सोचा, इसे हथकंडे पर लाना चाहिये। बोला, "पन्द्रह रुपये का सोना होगा, क़रीब पांच रुपये का पत्थर होगा। यदि चाहो, तो मैं तुम्हें बीस रुपये दे सकता हूं।"

कहां पांच हज़ार और कहां केवल बीस। पंडा जी निरे घोंघा नहीं थे। यह पांच हज़ार की न होगी तो बीस की भी नहीं हो सकती। ज़रूर यह मुझसे चाल खेलता है। उल्लू बसन्त समझकर लूटना चहता है। पर मैं मूर्ख नहीं हूं, जो सहज ही इसके झांसे में आजाऊं। पंडा जी बोले, "रहने दीजिये, मुझे नहीं बेचना है।"

जौहरी—"आपने इसे कितने में ख़रीदा है?"

पंडा—"बीस रुपये में नहीं ख़रीदा।"

जौहरी—"आख़िर, कुछ तो दिया होगा।"

पंडा जी ने किञ्चित क्रोध करके कहा, "दिया नहीं, तो क्या कहीं डाका डाला है?"

जौहरी—"साधारण तौर से बात करो भाई। वही तो मैं पूछ रहा हूं, आपने इसके लिये क्या दिया है?"

पंडा—"इसकी क़ीमत एक आदमी की जान है।"

पंडा जी अँगूठी जौहरी के हाथ से छीन कर चलने लगे। कैसा उजबक आदमी है। साथ ही जौहरी ने देखा, सोने की

चिड़िया उड़ी जा रही है। पुकार कर कहा, "सुनो तो भाई। इस तरह से सौदा थोड़े ही पटता है।"

पंडा जी ने घूमकर कहा' "आपसे नहीं पट सकता। किसी और जगह देखूंगा।" फिर वे चलने लगे।

जौहरी ने दौड़ कर पकड़ा। कहा चलये, "आइये। बिना ठीक समझौते के कोई ज़बरदस्ती तो करेगा नहीं। आपका माल है। लाख रुपया माँगो। मेरी इच्छा है, चाहे मुफ़्त में न लूं।"

पंडा जी जौहरी के इतने आग्रह से समझ गये कि अवश्य इसका मूल्य अधिक है। हंसते हुए कहा, "बातें तो ऐसी करते हो। पाओ, तो वैसे ही हज़म कर जाओ। डकार तक न आवे।"

जौहरी—"नहीं, मैं ऐसा आदमी नहीं हूं। दूसरे की चीज़ हराम समझता हूं।"

पंडा—"रंग ढंग से तो ऐसा नहीं जान पड़ता।"

जौहरी—"चलिये, दूकान पर बातें होंगी।"

घसिटते हुये पंडा जी फिर जौहरी की दूकान पर गये। बैठ कर मुस्कुराते हुए कहा अच्छा तो बताइए, इसकी सच्ची क़ीमत क्या है?"

जौहरी ने बात पलट कर धमकाने के अभिप्राय से कहा, "पहिले आप कहिये, इसे कहां पाया है।"

पंडा—"कहीं पाया हो, इससे आप को कोई मतलब नहीं है।"

जौहरी—"मुझे कुछ........"।

पंडा—"इतना समझ रखिये कि यह चोरी की नहीं है। मुझे इसके बेचने की ग़रज़ नहीं है। आप के गले नहीं लगाता। सिर्फ़ क़ीमत बता दीजिये।"

जौहरी—"जब आप इसकी क़ीमत नहीं जानते, तब यह हरगिज़ आप की नहीं हो सकती। कहीं पड़ी मिली होगी।"

पंडा जी बिगड़ पड़े। लाल होकर बोले, "झगड़ा करना चाहते हो क्या? मैं इसके लिए हर समय तैय्यार रहता हूं। डरता नहीं। सिर फोड़ने-फूटने की परवाह नहीं करता।"

जौहरी—"ज़्यादा तेज़ न पड़ो।"

जौहरी ने देखा, बड़े ग़ज़ब के आदमी से पाला पड़ा है। सब खींच गया। कहीं उजड्डपन में आकर कुछ कर न बैठे।

उसी समय एक बैरागिनी और दो बैरागी आये। एक गा रहा था:—

"मनुज तू माया में मत भूल।
मोहमयी माया अति प्रबला, अहै पाप कर मूल।
काम-क्रोध-मद-लोभ-त्याग रे, जान धर्म प्रतिकूल॥
मनुज! तू माया में मत भूल।"

रुपिया ने आगे बढ़ कर पूछा, "आप लोग क्यों झगड़ रहे हैं?"

जौहरी—"मेरा कोई अपराध नहीं। ये आप ही बिगड़ रहे हैं।"

पंडा जी ने कड़क कर कहा, "आप ही कैसे बिगड़ रहे हैं, जी? तुम कहना चाहते हो कि मैंने यह अंगूठा कहीं से चुरा ली है।"

जौहरी—"चुराने का नाम तो मैंने नहीं लिया"

पंडा—"फिर तुम्हारा क्या मतलब था? मैं तो सीधी तरह दाम पूछता था, तुम लगे अन्ट-सन्ट बकने।"

श्रीराम ने पास झुक कर कहा, "कौन सी अंगूठी है? ज़रा दिखाओ।"

पंडा जी ने अंगूठी दिखा दी। अंगूठी देख कर रुपिया बड़ा चकित हुई। यह तो उनके पास थी। इसके पास कहां से आगयी? उसने पिता का हाथ पकड़ कर धीरे से कान में कह दिया, "मैं इस अंगूठी को पहिचानती हूं।" यह सुन कर श्रीराम बड़े प्रसन्न हुए।

दीनानाथ का कुछ न कुछ पता अवश्य लगेगा। पंडा जी से पूछा, "तुम इस अंगूठी की ठीक क़ीमत जानना चाहते हो न?

पंडा—"हां।"

रुपिया—"इसकी क़ीमत पांच हज़ार रुपया है।"

पंडा—"बिलकुल ठीक है!"

रुपिया—"न एक पाई कम, न एक पाई अधिक।"

जौहरी अपनी क़लई खुलती देख चुपके से सरक गया। उसे सन्देह पूरा था। चाहता, तो कुछ न कुछ बखेड़ा खड़ा कर

देता। पर आख़िर था तो बनिया ही हिम्मत नहीं पड़ी। इधर पंडा जी आश्चर्य्य-सागर में डूब गये। अरे! इसने इसकी इतनी ठीक क़ीमत कैसे बता दी? किस तरह दृढ़ता से कहती है, न एक पाई कम; न एक पाई अधिक। ज़रूर कोई पहुंची हुई है। आत्म-तेज से आंखें चमक रही हैं। ये दोनों भी कोई साधारण आदमी नहीं जान पड़ते। एक तो पंडा जी वैसे ही साधु-सन्तों का आदर करते थे, अब और भी श्रद्धा बढ़ गयी। हाथ जोड़ कर कहा, "माई! मेरी इच्छा है कि आप अब दास के घर को पवित्र करें। यद्यपि मैं ग़रीब हूं, फिर भी सेवा में कोई त्रुटि नहीं होने दूंगा। आप लोगों को प्रसन्न करने का भरसक प्रयत्न करूंगा।"

रुपिया तो यह चाहती ही थी। पंडा जी साथ चलने के लिए न भी कहते, तो वह किसी न किसी युक्ति से जाती ही। श्रीराम भी उत्सुक हो रहे थे; अमरनाथ दोनों के अनुगामी थे। तीनों पंडा जी के साथ उनके घर की ओर चले।

सूर्य्य सिर पर आ रहा था। पंडा जी जल्दी जल्दी मार्ग तय करके घर आये। तीनों के लिए अलग अलग आसन बिछा दिये। वे सुखपूर्वक बैठे। दालान के एक ओर एक आदमी चटाई पर पड़ा सो रहा था। देह सूख कर कांटा हो रही थी, आंखें भीतर धंसी थीं, शरीर में ख़ून का नाम न जान पड़ता था। किसी ने उस ओर ध्यान नहीं दिया। पर रुपिया की आंखें उधर पड़ गयीं। उसकी तीव्र दृष्टि ने पहिचान लिया। सहसा उठ कर खड़ी हो गयी। बोली, "पिता जी! वे ही हैं।"

श्रीराम—"क्या है?"

रुपिया—"वे पड़े हैं। देह पहिले से बहुत दुर्बल हो गयी हैं। पर मैं उन्हें अच्छी तरह पहिचानती हूं। वे ही हैं।"

पहिले तो श्रीराम नहीं पहिचान सके। तमाम शरीर में हड्डी ही हड्डी दिखायी देती थी। फिर ध्यानपूर्वक देखने से रुपिया की बात सच मालूम पड़ी। आनन्द से बोल उठे, "बेटी, तेरा भाग्य बड़ा प्रबल है। तू बड़ी सौभाग्यवती है।"

अमरनाथ को उन्हें पहिचान कर आनन्द के साथ ही साथ खेद भी हुआ। बेचारे कैसे लकड़ी हो रहे हैं। ऐसी दशा तो अकाल के कंगलों की भी नहीं रहती।

श्रीराम ने दीनानाथ को दिखाकर धीरे से पंडा जी को समझा दिया कि ये हमारे ही आदमी हैं। तुमने इन्हें अपने यहां आश्रय देकर बहुत अच्छा काम किया है।

पंडा जी बोले, "इनकी ज़िन्दगी का कुछ ठिकाना न था। भाग्य से मैंने इन्हें गंगा जी में बहते हुए पा लिया है। ये किसी चिन्ता से ग्रसित जान पड़ते हैं। मैं बहुत सार-सम्हाल रखता हूं। फिर भी सूखते ही जाते हैं। मेरे देखते ही देखते इनकी आधी देह रह गयी है।"

श्रीराम—"अब हम लोग आ पहुंचे हैं, तुम्हें अधिक कष्ट न उठाना पड़ेगा। ये शीघ्र ही अच्छे हो जायेंगे।"

पंडा—"कई बार मैंने इनके मन का हाल जानना चाहा। इन्होंने कुछ नहीं बताया। टालते रहे हैं बहुत अच्छे।"

रुपिया पास बैठ कर पति के पैर दबाने लगी। उस समय उसका हृदय आनन्द उद्वेग, और आशंका से उछल रहा था। पंडा जी ने कुछ रुकावट नहीं की। वे अतिथियों के सत्कार में लग गये। श्रीराम दीनानाथ के गंगा में पड़ने की बात सोच कर बार बार कांप उठते थे। रुपिया सब भूल कर अपने भविष्य की कल्पनाएं कर रही थी।

कोमल कर-स्पर्श से दीनानाथ की निद्रा भंग हो गयी। विस्मित नेत्रों से वे रुपिया और दोनों वैरागियों को देखने लगे। किसी को पहिचाना नहीं। तो भी ऐसा मालूम हुआ, जैसे उन्हें कभी देखा हो। रुपिया का चेहरा जलने के कारण बिलकुल बदल गया था। अमरनाथ और श्रीराम वैरागी के वेश में दूसरे हो रहे थे। रुपिया की ओर देखकर दीनानाथ ने कहा, "तुम कौन हो? वैरागिनी होकर, विशेषकर स्त्री होकर मेरा पैर क्यों छू रही हो?"

रुपिया आंखों में आंसू भर लायी। कुछ बोल न सकी। दीनानाथ एकटक उसके मुख की ओर देख रहे थे। ये आंखें तो कभी की देखी जान पड़ती हैं। इनमें की छलछलाती हुई बूंद भी परिचित सी हैं। यह है कौन? रुपिया को तो वह भी न पहिचान सके। उसे तो वे पञ्च-तत्व में मिल गयी हुई समझते थे। दीनानाथ ने पैर सिकोड़ लिये। उठकर बैठ गये। पूछा, "बोलो, तुम कौन हो?"

पुत्री को संकुचित देखकर श्रीराम उठ कर सामने आ गये।

बोले, "पहिले मुझे पहिचान लीजिये, तब आप इसे सहज ही जान जायंगे। मैं श्रीराम हूं।"

अब सब प्रत्यक्ष हो गया। अचानक कुहरा हट जाने से जैसे सब चीज़ें स्पष्ट दिखायी देने लगती हैं, वैसे ही विस्मृति का पर्दा हट जाने से सब बातें समझ में आ गयीं। तो क्या यह रुपिया है? मरी नहीं? क्या दोनों बच गये? क्या उस धधकती हुई प्रचण्ड अग्नि से दोनों फिर अपनी दानव-लीला करने के लिये निकल आये? परमात्मा ने दया करके दुष्टों को बचा दिया? दीनानाथ की आंखें कपाल पर चढ़ गयीं। घृणा से नाक सिकोड़ ली। कहा, "दूर हो! दूर हो!! यहां से पापिनी! अपना काला मुख दिखाने क्यों आ गयी है?"

रुपिया को अपमानित देख श्रीराम को क्रोध चढ़ आया। पर वे उसे ज़ब्त कर गये। शान्ति से बोले, "वृथा भ्रम में पड़कर किसी का इस प्रकार निरादर न कीजिए। आप के मन का सन्देह निर्मूल है।"

दीनानाथ ने और भी उत्तेजित हो कर कहा, "हटो, हटो! तुम सब पापी हो। मेरे सामने मत आओ। तुम लोगों को मैं नहीं देखना चाहता। जाओ।"

श्रीराम अब अपने को सम्हालने में असमर्थ हो गये। जो कुछ मुंह में आया, बकने लगे। चिल्ला कर कहा, "बस, चुप रहो। बहुत हो चुका। पापी? पापी है कौन? फूटी आँखों से तुम यह नहीं देख सकते? भले को भी बुरा समझते हो।

ख़बरदार, जो यह शब्द फिर मुंह से निकला। पापी तुम हो। स्वयं पापी होकर दूसरे को पापी कहने के लिये तुम्हारी ज़बान क्यों कर खुल जाती है? शायद तुम अपने को बड़ा धर्मात्मा समझते होगे। पर मैं दृढ़ता से कह सकता हूं, तुम्हारे समान पापी पृथ्वी-तल पर खोजने से नहीं मिल सकेगा। अपने मुंह मियां-मिट्ठू बनने से कुछ नहीं होता। तुम बड़े नीच हो, दुरात्मा हो, अधम हो। अपना स्वरूप अपने को नहीं सूझता, नहीं तो तुम जान लेते कि तुम कैसे पिशाच हो। नराधमों में श्रेष्ठ हो। पिशाचों के शिर-मौर हो। किस साहस से तुम दूसरे का अपमान करते हो? पापात्मा! तुम.........!"

रुपिया ने दौड़ कर पिता के मुंह पर हाथ रख दिया। भर्राये हुए गले से कहा, "पिता जी!"

श्रीराम आवेश से भरे थे। उसे दूर झटक कर फिर कहने लगे, "बुढ़ापे में विवाह करते समय लाज नहीं लगी! अब दूसरे को पापी बनाते हो। पाप का बीज बोया किसने था? अब दूसरे के मत्थे अपराध मढ़ कर अलग हो जाना चाहते हो। बुढ़ापे में जो विवाह का शौक़ चर्राया था, उसका फल क्या कुछ नहीं होगा? धन के बल से मुझे फांस कर तुमने मेरी कन्या का जीवन दुःखमय कर दिया है, इस पाप से क्या तुम अछूते ही रहना चाहते हो? धिक्कार है! अपने साथ तुमने एक निरपराधिनी को भी डुबा दिया। उसका सब सुख छीन लिया। इतने पर भी क्या तुम अच्छे बनने का दावा कर

सकते हो ? चौथा-पन आगया, काम-लिप्सा नहीं गयी। पशुओं से भी गये-बीते हो। अपनी जघन्यता छिपाने के लिए दूसरे को अपराध लगाते हो। स्मरण रक्खो, मेरी कन्या बिलकुल पवित्र है। कलंक का एक छींटा भी उसकी देह पर नहीं लगा है। उस पर सन्देह करने की बात मुंह से नहीं निकालना। वह कसौटी पर रक्खी जा चुकी है। खरे सोने के समान बिलकुल शुद्ध है। सती सीता के सदृश अग्नि-परीक्षा में उत्तीर्ण होकर निकल आयी है।"

दीनानाथ को आज अपने ऊपर हार्दिक ग्लानि हुई। अभी तक भूले हुए थे। आज उन्होंने अपने को पहिचाना। अपना वास्तविक स्वरूप देखा। मोह का अन्धकार-समूह विलीन हो गया। समझ गये कि इस समय तक मैं अपने को धोखे में डाल रहा था। मर्मान्तिक कष्ट से वे विचलित हो उठे। हृदय में तीव्र वेदना हुई। सचमुच मैं बड़ा पापी हूं। महा अधम हूं। मैंने बड़ा भारी अन्याय किया है। यह अनर्थ कर डाला है। मैंने वह दूषित कर्म कर डाला है, जिसका वर्णन विधाता के दण्ड-विधान में भी न होगा। दूसरे के भाग्य को बिगाड़ने का मेरा कोई अधिकार न था। मैंने अनधिकार-चेष्टा की है। बेचारी किसी योग्य मनुष्य के साथ ब्याही जाती, तो बहुत सुख पा सकती थी। मैंने उसका सुख मिट्टी कर डाला है, आजन्म दुःख भोगने के लिये उसे अथाह विपत्ति के समुद्र में बहा दिया है। अब वह निरावलम्ब है। मैं जैसे हूं, वैसे नहीं, उसे अकेले ही चिन्ता के

साथ जीवन-यात्रा पूरी करनी होगी। आगे कैसी आफ़तों का सामना करना पड़े ? आह ! मोहान्ध होकर मैंने क्या कर डाला ? मेरा निस्तार कहां होगा ? और सखाराम ! तेरे निकट भी मैं अपराधी हूं। पिता तुझे मेरे हाथों में सौंप गये थे, कह गये थे, अब तुम्हीं इसके सब कुछ हो। माता के समान प्यार करना, पिता के समान देख रेख करना। मैं कुछ नहीं कर सका। उनकी अन्तिम आज्ञा का पालन मुझ से नहीं हो सका। उलटे तुझे भारी दुःख दिया। अहा! तू मेरा कितना आदर करता था। मेरे सामने सिर उठा कर निधड़क हो बात तक नहीं करता था। मेरी इच्छा पूर्ण करने के लिये प्रत्येक समय प्रस्तुत रहता था। तूने मेरी आज्ञा कभी नहीं टाली। भला या बुरा, जो कहता था, तू तुरन्त उसे करने लगता था। ऐसा सुशील भाई बड़े भाग्य से मिलता है। मैंने तेरा मूल्य नहीं जाना। आंख रहते भी अन्धा बन गया। मणि को कांच समझ कर फेंक दिया। गांव भर में तेरी सच्चरित्रता का बखान किया जाता था। लोगों के लिए तू आदर्श था। मेरा ऐसा विश्वास-पात्र, प्रीति-भाजन और उच्च गुणों वाला भाई कभी निन्दनीय नहीं कहा जा सकता। उसका मेरे प्रति विश्वासघात करना सर्वथा असम्भव है। अवश्य मुझे भ्रम होगया था। मेरे सिर पर उस समय शैतान नाच रहा था। तेरी मुझ पर अटल श्रद्धा थी, तेरा मन मुझ से अब तक न फिरा होगा। मैं ही ऐसा दुष्ट हूं, जो तेरा तिरस्कार करने में नहीं हिचका। बड़ा पातकी

हूं। सारा दोष मेरा है। मैंने भयंकर कर्म किया है। दीनानाथ हृदय के आन्दोलन से व्याकुल हो उठे। अपने को पापी समझते समझते नरक के द्वार पर जा पहुंचे। बड़े डरावने दृश्य आंखों के सामने आने लगे। वे तुरन्त मूर्छित हो गए।

इकतीसवां परिच्छेद।

सखाराम की चिन्ता।

ख खुलने पर दीनानाथ ने अपने को रुपिया की गोद में लेटे पाया। श्रीराम एक अंगोछे को पानी से तर करके माथा धो रहे थे। अमरनाथ पंखा झल रहे थे। पंडा जी भी पास बैठे थे। किसी चीज़ की आवश्यकता पड़ने पर उठ कर ला दिया करते थे। घटना-क्रम ऐसा आपड़ा था कि रुपिया की लाज-शर्म हवा हो गयी थी। पिता के सामने पति के पास बैठने में वह ज़रा भी न संकुचित होती थी। हरएक काम में आगे हो पड़ती थी। दीनानाथ का शरीर बिलकुल शिथिल हो रहा था। हाथ पैर ढीले पड़ गये थे। किसी भी अङ्ग को उठाकर छोड़ देने से वह गिर पड़ता था। जैसे किसी नशेबाज़ का नशा उतर गया हो। शरीर में ज़रा भी शक्ति न थी। पलक उठते थे, तो बड़ी देर तक उठे ही रह जाते थे। बार बार गड्ढे सी आंखें बाहर निकल पड़ती थीं। कभी कभी ऊपर को चढ़ जाती थीं, एक बार सारी देह इतनी ज़ोर से तन गयी कि सब लोग डर से कांप उठे। पंडा जी ने दूध गर्म किया और थोड़ा थोड़ा करके मुंह में डाला। गर्मी

पहुंचने से शरीर में कुछ बल आया। नसों में स्वाभाविकता बढ़ी। दीनानाथ होश में थे, पर शरीर क़ाबू में नहीं था। अब दूध पीने से शक्ति का संचार हुआ, अवस्था बदल गयी, उठ कर बैठने लगे। श्रीराम ने रोक कर कहा, "अभी आप लेटे ही रहिये। बदन में ताक़त आने दीजिये।" दीनानाथ फिर वैसे ही लेट गये। सिर उठाकर फिर रखने से रुपिया की जांघ की कोमलता मालूम हुई बड़ा सुख जान पड़ा।

दीनानाथ को अपने किये का बड़ा पछतावा था। पश्चात्ताप के कारण मुख से कई शब्द निकल गये। श्रीराम ने ठीक से नहीं सुना। पूछा, "आप क्या चाहते हैं?"

दीनानाथ ने बड़े प्रयत्न से फिर कहा, "मुझे क्षमा कीजिए।"

श्रीराम का हृदय करुणा से भर गया, आंखों में पानी उतर आया, भारी गले से कहा, "चिन्ता न कीजिए। भूल सभी से हो जाती है। अच्छे बुद्धिमान मनुष्य भी अपने को धोखा दे देते हैं। संसार में कोई विरला ही ऐसा होगा, जिसने कुछ पाप न किया हो।"

इससे दीनानाथ को शान्ति नहीं मिली। उन्होंने फिर अनुनय भरे शब्दों में कहा, "मुझे क्षमा कीजिए।"

पश्चाताप में असीम प्रबलता होता है। वह चाहे जिसका कलेजा हिला सकता है। श्रीराम हृदय के आवेग को रोककर बोले, "मैं तुम्हें क्षमा करता हूं।"

तब दीनानाथ ने रुपिया की ओर देखकर क्षमा की याचना की।

श्रीराम ने कहा, "वह भी तुमको क्षमा करती है।"

दीनानाथ का मुख प्रातःकालीन कमल की भांति विकसित होगया। हृदय का बोझ हट जाने पर वे बहुत कुछ स्वस्थ दिखायी दिये। मन में स्थिरता आयी।

मनोमालिन्य दूर होजाने से श्रीराम का प्रेम दीनानाथ पर दुगना होगया। वे उनका मन बहलाने का विशेष प्रयत्न करने लगे। तरह तरह की मनोरंजक बातें करते, नित्य घुमाने लेजाते और इलाहाबाद ऐसे बड़े शहर की नयी नयी और विचित्र बातें बताते थे। और तो सब ठीक था, पर सखाराम की चिन्ता दीनानाथ के हृदय में अपना घर किये ही रही। उसका ध्यान वे एक पल के लिये भी नहीं भूले।

पंडा जी के साथ सब कोई बड़े तड़के गंगा-स्नान करने जाया करते थे। एक बार उनकी आंख तीन बजे खुली। चांदनी छिटकी हुई थी। बाहर निकलकर देखा, सवेरा जान पड़ा। सब को जगाकर उसी समय चल पड़े, सड़क से घूमकर गली में पहुंचे। ऊंचे ऊंचे मकानों के कारण वहां चन्द्रमा की किरणें नहीं पहुंच पाती थीं। अन्धकार होरहा था। कुछ दूर जाने पर अचानक किसी के चिल्लाने की आवाज़ कानों में पड़ी। साथ ही कोई आदमी दौड़ता हुआ आकर अमरनाथ के ऊपर गिर पड़ा। अमरनाथ भी गिरते गिरते बचे। डांटकर कहा। "कौन है बे? खच्चर की तरह दौड़ा चला आता है? सम्हल कर नहीं चलते बनता।"

वह हाँफते हाँफते बोला, "माफ़ करो भाई। अच्छा हुआ आप लोग मिल गये। मेरी तो जान ही निकली जारही थी।"

श्रीराम—"क्या हुआ?"

वह—"कुछ पूछिए नहीं। ऐसी ज़िल्लत कभी नहीं उठानी पड़ी थी। इस गली में कोई शैतान रहता है क्या?

अमरनाथ का क्रोध जाता रहा। हँसकर बोले, "कोई चिपट तो नहीं गया?"

वह—"ऐसा कुछ मालूम दिया, जैसे कोई मेरा पीछा कर रहा हो। जैसे जैसे मेरे क़दम पड़ते थे, वैसे ही उसके पैरों की भी आहट मिलती जाती थी। मैं डरपोक नहीं हूं। पर आज की बात क्या कहूं। इतना डर गया कि जिसका कुछ कहना नहीं। बस, एकदम जान लेकर भागा। यहां आप से मुलाक़ात होगयी।"

सब हंसने लगे। श्रीराम ने उसे आश्वासन देते हुए कहा, "नहीं, कुछ नहीं है। शहर में शैतान क्या करने आवेगा? आप को धोखा होगया होगा। आप कौन हैं?

वह—"मेरा नाम रहमान तांगावाला है। कानपुर में रहता हूं। किसी काम से आया हूं। यहां मेरे एक दोस्त रहते हैं। उन्हीं के यहां ठहरने का इरादा था। पर घर का पता नहीं है। खोज रहा था कि बला में पड़ गया।"

श्रीराम—"जब उनके घर का पता ठीक तौर से नहीं मालूम तब कहां खोज रहे थे?"

रहमान—"इलाहाबाद का कोना कोना मेरा देखा हुआ है। इसी भरोसे पर सोचा था, उनका घर जल्दी ढूंढ़ निकालूंगा। यहां तो दूसरी ही बात होगयी। मुट्ठीगंज का नाम अच्छी तरह याद है, बारह बजे गाड़ी से उतरा था। अभी थोड़ी देर हुई मैंने तीन का घंटा सुना है। इतनी देर कोरी हैरानी उठानी पड़ी।"

तीन का नाम सुनकर दीनानाथ चौंके। बोले, "हैं, तीन!"

रहमान—"हां अभी तीन ही तो बजे हैं"

दीनानाथ पंडा जी की ओर घूम कर बोले, "आप तो कहते थे, सवेरा हो गया है?"

पंडा—"मैं यही समझता था। सवेरा सा ही तो लगता है।"

श्रीराम—"मुट्ठीगंज आप बहुत पीछे छोड़ आये हैं। अब क्या इरादा है? दोस्त को खोजेंगे या नहीं।"

रहमान—"बाज़ आया। आपलोग कहां जारहे हैं?"

श्रीराम—"गंगाजी स्नान करने।"

रहमान—"इतनी रात को? मैं भी आप लोगों के साथ चलूंगा। एक दिन तो रहना ही है। किसी तरह कट जायगा। आज सेना। न सही।

सब फिर चल पड़े। कानपुर का नाम सुनकर दीनानाथ का हृदय न जाने कैसा करने लगा। उसके पास ही तो मेरा गांव है। कदाचित् इससे वहां का कुछ हाल मिल सके। पूछा, "कानपुर के क्या समाचार हैं?"

रहमान—"सब अच्छा है।"

दीनानाथ—"कोई नयी बात हो, तो सुनाते चलिये। रास्ता जल्दी ख़तम होजायगा।"

रहमान—"और तो कुछ नहीं है, हां, इस समय वहां सखाराम के आने की बड़ी धूम है। सुनते हैं, वे कोई बड़े भारी आदमी हैं।"

रुपिया पिता से सटकर चलने लगी। अमरनाथ रहमान के मुंह की ओर ताकने लगे। दीनानाथ ने उत्सुक होकर पूछा, कौन सखाराम।"

रहमान—"यह तो मैं नहीं कह सकता। दो चार सखाराम की बात मुझे नहीं मालूम। उनके बारे में मैं ज्यादा नहीं जानता।"

दीनानाथ—"कुछ भी नहीं कह सकते।"

रहमान—"एक बार मैं एक गांव से कानपुर स्टेशन को अपना तांगा ले जारहा था। उसमें एक रईस आदमी अपनी बेटी के साथ बैठे थे। रास्ते में घोड़ा भड़क पड़ा; खड़ा होगया; एक जवान ज़मीन पर बेहोश पड़ा था। तांगे पर बैठे हुए रईस बड़े रहमदिल थे। उन्होंने उसे उठाकर तांगे पर बैठा लिया और अपने साथ लखनऊ लेगये। वह बड़ा ही ख़ूबसूरत था। ऐसा ख़ूबसूरत आदमी मैंने ज़िन्दगी में एकही बार देखा है। सखाराम की जो कुछ हुलिया सुना है, वह ठीक उससे मिल जाती है। शायद दोनों एकही हों।"

दूसरा कोई होता, तो रहमान के इस कथन से कुछ भी

न समझ सकता था । पर दीनानाथ का मन लग गया । पूछा, "यह कितने दिन की बात आप कहते हैं ?"

रहमान—"कई महीने होगये ।"

दीनानाथ—"अच्छा, सखाराम का हुलिया मुझसे कहते जाइये ।"

रहमान ने जो कुछ कहा, उससे दीनानाथ का रक्त उबलने लगा । वही है, वही । दूसरा नहीं होसकता । रहमान से और प्रश्न किया, "क्या सखाराम इस समय कानपुर में नहीं है ?"

रहमान—"नहीं"

दीनानाथ—"वहां उसकी धूम किस लिए मची हुई है ?"

रहमान—"आप को नहीं मालूम, बच्चा बच्चा उनके नाम को जान गया है । वे देश के बड़े नेताओं में से हैं । कानपुर में जाकर व्याख्यान देंगे । वहां के रहने वालों ने उन्हें बुलाया है ।"

दीनानाथ ने आश्चर्य्यान्वित होकर कहा, "व्याख्यान ?"

रहमान—"हां उनका यही काम है । सबजगह घूमते फिरते हैं, व्याख्यान देते हैं । लोग उनका बड़ा आदर करते हैं ।"

इस बात पर दीनानाथ को विश्वास नहीं आया । सखाराम तो ठीक से बातें करने में भी सकुचता था । व्याख्यान कैसे देगा ? फिर भी उससे मिलना अवश्य चाहिये । आपस में सखाराम की बातों का सिलसिला गंगा-तट तक चला गया । वहां पहुंचने पर सब ने अच्छी तरह नहाया-धोया ।

घर लौटने पर दीनानाथ ने श्रीराम से अपनी इच्छा प्रकट की

शीघ्र ही वे उनसे सहमत होगये। उसी दिन जाने का प्रबंध कर लिया गया।

पंडा जी ने कहा—"आप लोगों के चले जाने से मुझे बड़ा क्लेश होगा। ममता लगी रहेगी।"

सब लोगों ने पंडा जी के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की और बहुत धन्यवाद दिया।

बत्तीसवाँ परिच्छेद ।

एक अपूर्व दृश्य ।

रों ओर जनता का अपार समूह था । समुद्र की अगणित लहरों के समान लोगों की हलचल थी । सखाराम जहाज़ में मस्तूल की तरह गम्भीरता से खड़ा था । उसके बोलते ही शान्ति का साम्राज्य छा गया । सब एकाग्रचित्त हो सुनने लगे । सखाराम अविरल मार्मिक शब्दों की झड़ी लगाने लगा । दीनानाथ उसकी इतनी बढ़ी चढ़ी विद्वत्ता देख कर मुग्ध हो गये । एक एक शब्द वेद के शब्द के सदृश प्रमाणिक और अमृत के तुल्य मधुर थे । सांस रोक कर वे सुनने लगे । हृदय में प्रेम खोलने लगा । यह ज्ञान इसे कहां मिला ? इतनी शक्ति इस में कहां से आगयी ? ऐसे असाधारण तेज और प्रभाव का अधिकारी कैसे होगया ? दीनानाथ प्रेम और विस्मय में डूबने उतराने लगे ।

व्याख्यान समाप्त होने तक तो दीनानाथ अपने को किसी प्रकार रोके रहे, फिर तीर-वेग से सखाराम के पास पहुंचे । कुछ देर तक विह्वलता के कारण मुख से कोई शब्द नहीं निकला । पश्चात् केवल 'सखाराम' कहा । अकस्मात हृदय में पूर्व घटना की स्मृति जाग उठी । देह काँप उठी । सखाराम कहने

के साथ ही हृदय का वह भाव भी उसीके साथ चला गया। सखाराम यह आघात नहीं सहन कर सका मूर्छित होकर गिर पड़ा।

लोगों में खलबली फैल गयी। आगे वाले और आगे झुके। पीछे वाले आगे वालों को धक्का देने लगे। जो कुछ दूर थे, वे भी "क्या हुआ क्या हुआ?" कह कर दौड़ पड़े। बड़ा घमासान मचा। दो चार निर्बल दब कर पिस गये, पुलिस मौजूद थी। किन्तु उसके किये कुछ न हो सका। भीड़-भड़क्के के कारण उसका आगे बढ़ना ही न हो सका। सब चकित थे। क्या हो गया?

रुपिया उछलकर टेबुल पर खड़ी हो गयी। अपने बारीक किन्तु तीव्र स्वर से कहा "आप लोग कृपा करके उपद्रव न मचा-कर शान्त रहिये।" उसकी आंखें तारों के समान चमक रही थीं। वे अपना काम कर गयीं। लोग ठगे से चुपचाप खड़े हो गये। आश्चर्य्य पर महा आश्चर्य्य! यह अन्तर्भेदिनी दृष्टि रखने वाली वीर-बाला कौन है?

उधर दीनानाथ सखाराम से लिपटे हुए कह रहे थे, सखा-राम? मेरे प्यारे भाई! सुनो। आंख खोलो, मेरी ओर देखो देखते क्यों नहीं? मैं तुम्हारा भाई हूं। डरो मत। डरते क्यों हो? मैं तुम्हारा कुछ नहीं करूंगा। उठो! मुंह से बोलो। मुझ पर क्रोधित हो क्या? क्षमा करो। मैं अपराधी हूं। मैंने तुम्हारे प्रति बड़ा अन्याय किया है। उसका मुझे बड़ा पश्चात्ताप है।

मेरे दोषों को भूल जाओ। उन्हें मन से अलग कर दो। देखो, तुम्हारा बड़ा भाई आज विनती कर रहा है। क्या उसे क्षमा नहीं करोगे?"

सुनने वाले हैरान थे। कैसी समस्या है?

श्रीराम ने एक मोटर खोजी। रुपिया और अमरनाथ के साथ दीनानाथ और सखाराम को उस पर चढ़ाया। तुरन्त उसे भगा ले गये। सहस्रों विस्मयविस्तरित नेत्र उस ओर ताकते ही रहे।

दीनानाथ गद्गद हृदय से सोच रहे थे, ऐसे सुन्दर मुख में क्या पाप की छाया समा सकती है? इतने उच्च हृदय में क्या क्षुद्रता का समावेश हो सकता है? असम्भव है।

ठहरने के स्थान पर पहुंचने पर सखाराम ने आंखें खोलीं। एक बार "भैय्या" कह कर फिर बंद कर ली। उस 'भैय्या' शब्द में कितना अनुनय-विनय और कितनी क्षमा-प्रार्थना भरी थी, यह कौन कह सकता है? दीनानाथ ने उसकी कोमल देह उठा कर छाती से लगा ली कहा, "भूल जाओ। मेरे सुशील भाई! भूल जाओ। मेरे कठोर वचनों को भूल जाओ। मेरी निर्दयता की ओर ध्यान न दो। मैं अपनी भूल अब जान गया हूं। भाई, मैं बड़ा पापी हूं। मेरी दुष्टता के कारण तुम्हें बहुत कष्ट भोगना पड़ा है। अपराध का मूल मैं ही हूं। मेरा भाई होने के कारण विधाता ने मेरे भाग्य-सूत्र के साथ तुम्हारा भी सम्बन्ध कर दिया है। इसी से तुम्हें इतनी यातना मिली है। अपने बड़े भाई पर दया करो, उसे क्षमा करो।"

सखाराम कानों से सुन रहा था, पर देह निश्चेष्ट थी। भाई के विलाप ने उसे विचलित कर दिया। रहा नहीं गया। बंद आंखों से आंसु ढरकने लगे। कुछ ही देर बाद सिसकियां बंध गई। दीनानाथ की गोद से छटक कर वह उनके पैरों पर गिर पड़ा। उन्होंने फिर उसे उठा कर छाती से चिपका लिया। दोनों देर तक रोते रहे। उन जल-कणों ने उनके मन का मैल दुःख, कष्ट, चिन्ता आदि सभी को धो डाला।

तेंतीसवाँ परिच्छेद।

सखाराम और दीनानाथ।
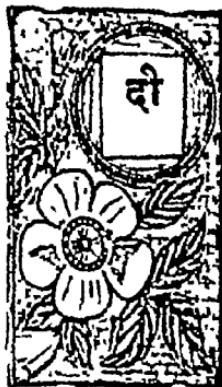
नानाथ ने सखाराम से कहा, "सखाराम, मैं तुम्हारी इस तरह की काया-पलट देख बड़ा स्तम्भित हूं। तुम में घोर परिवर्त्तन हो गया है। पहिले से बिलकुल बदल गये हो। यह सब कहां सीखा? थोड़े में अपनी कहानी कह जाओ। उस प्रलय कारी घटना के पश्चात तुम कहां कहां गये और तुमने क्या क्या किया, यह जानने की मुझे बड़ी लालसा है।"

सखाराम—"जब आप मुझ पर क्रुद्ध हो रहे थे, तब मैं मानसिक कष्ट के कारण संज्ञा-शून्य हो गया था। उसके पहिले आपने मेरी ओर कभी वक्र दृष्टि से नहीं देखा था। कभी कोई कड़े शब्द नहीं कहे थे। एकाएक आपका वह भाव देख कर मेरी वह दशा क्यों न हो जाती? आपका भी दोष नहीं है। वह दृश्य ही ऐसा था। पर मैं सत्य कहता हूं। वे मुझे मां के सदृश......................।"

दीनानाथ—"नहीं नहीं। वह कुछ मत कहो मैं तुम्हें जानता हूं। मुझे तुम पर पूर्ण विश्वास है। आगे कहो, क्या हुआ? उस बात का ध्यान भी करने से बड़ी लज्जा और दुःख होता है।"

सखाराम—"आंख खुलने पर मैं घर से निकल गया। उस समय भी मुझ पर बेहोशी छायी थी। किस तरह आग लगने से घर जल गया, मुझे नहीं मालूम। बेचारी......घर से निकल कर मैं कहां कहां गया, सो नहीं कह सकता। पैर उठते जाते थे और मैं चला जाता था। एक जगह जाकर गिर पड़ा। एक सज्जन अपनी पुत्री के साथ तांगे पर उधर से निकले। तब सवेरा हो गया था। उतने समय तक मैं सड़क पर ही पड़ा रहा। उन्होंने दया करके मुझे उठाया और अपने साथ लखनऊ ले गये।"

दीनानाथ-"यह मुझे मालूम हो चुका है। वह तांगे वाला मुझसे अलाहाबाद में मिला था। नाम रहमान है। उसने कहा था। उसी के बताने से मैं तुम्हें देखने के लिये यहां आ सका हूं।"

सखाराम—"तांगेवाले का नाम मुझे नहीं मालूम। 'रहमान' ही होगा। हम तीनों रेलगाड़ी में बैठे जा रहे थे। संयोग से मैं उस पर से गिर पड़ा।"

दीनानाथ-"ऐं! चलती गाड़ी से गिर पड़े?"

सखाराम—"हां, नक्षत्र बिगड़े थे। जो हो जाता, वही थोड़ा था। अच्छा होने पर मैंने अपने को उन्हीं सज्जन के घर पर पाया। उनका नाम हृदयनाथ है और उनकी पुत्री का नाम तारा है। वे दोनों ही बड़े अच्छे हैं। मुझ पर उनकी असीम कृपा है। उन्हीं के किये से मैं इतना योग्य हो सका हूं। मुझे इस राह पर चलाने का सारा श्रेय एक तरह से तारा पर है। उसने

इस काम में बहुत उद्योग किया था। तरह तरह की बातें करके मेरा ध्यान इस ओर आकर्षित करती थी। मुझे मेरा कर्त्तव्य सुझाती थी। कर्त्तव्य-पालन के हेतु बारम्बार उत्साहित करती थी। है तो वह छोटी, पर इतनी चतुर और बुद्धिमती है कि दंग हो जाना पड़ता है उसकी वयस के साथ उसकी जानकारी को मिलान करने से बड़ा आश्चर्य होता है।"

दीनानाथ—"तुम्हारी बातें सुनने से मेरा मन भी उन्हें देखने को हो आया है।"

सखाराम—"उन्हें देख कर आप बड़े प्रसन्न होंगे। अवसर आने पर आपको उनसे अवश्य मिलाऊंगा।"

दीनानाथ—"तुमने देश-सेवा के कार्य्य में हाथ लगा दिया है। यह बहुत अच्छा हुआ। उस दिन मैंने तुम्हारी जैसी प्रतिभा देखी थी। उससे मैं बहुत संतुष्ट हूं। पर तुम केवल राजनैतिक विषय की ओर झुके हुए हो। साथ ही साथ सामाजिक सुधार भी करते चलो, तो अच्छा हो। इस समय समाज में फैली हुई कुरीतियां हटाने की भी कुछ कम आवश्यकता नहीं है।

सखाराम ने प्रश्नात्मक दृष्टि से दीनानाथ की ओर देखा।

दीनानाथ ने कहा, "आजकल यहां दूसरे कुरीतियों के साथ ही साथ वृद्ध-विवाह बुरी तौर से फैला हुआ है। इसका दूषित परिणाम तुम देख ही चुके हो। वृद्ध-विवाह से अत्यन्त निकृष्ट परिणाम निकलता है, इसका कोई और प्रमाण देने की आव-

श्यकता नहीं है। हज़ारों घर इस रोग से ग्रसित हैं और दुःख पा रहे हैं, तुम इस बुरी चाल के रोकने का प्रयत्न करो। इससे देश का बहुत लाभ होगा।"

सखाराम दीनानाथ के हृदय का भाव लक्ष्य कर बहुत शोकाकुल हुआ। गला भर आया। कुछ कहने का सामर्थ्य नहीं रहा।

दीनानाथ फिर बोले, "आजकल के धनी और विद्वान-दोनों ही, सामाजिक कुरीतियों को रोकने में अपनी बिलकुल उदासीनता दिखा रहे हैं। जानते हुए भी चुप बैठे हैं। चुप ही बैठे रहते तो भी भला था। वे स्वयं इस बुरे काम के लिए उदाहरण-स्वरूप बन रहे हैं। धनियों के घर की शोभा एक स्त्री से नहीं होती। विवाह पर विवाह करते जाते हैं। कितने ही बूढ़े हो गये हों, पर इसकी चाट नहीं मिटती। मानों अबलाओं का सर्वनाश करने के लिए ही पृथ्वी पर अवतरे हों। बड़े बड़े विद्वान और शास्त्रों में पारांगत मनुष्य धन के लोभ से उनकी कुरूचिपूर्ण अभिलाषाओं को फलीभूत होने देने में सहायक बन रहे हैं। इससे देश कितना दुःखी हो रहा है, यह तुम से छिपा नहीं है। प्रतिवर्ष अगणित संख्याओं में स्त्रियां विधवा हो रही हैं। अनेकों पुरुषों के अत्याचार के कारण भारयुक्त जीवन सहन न कर आत्मघात कर लेती हैं। कई प्रलोभनों में पड़कर भ्रष्ट हो अपना सर्वस्व गंवा बैठती हैं और अपने उज्ज्वल कुल में कलङ्क बन जाती हैं। स्त्रियों जन्म से ही अबला नहीं हैं यदि अबला होती भी हैं, तो पुरुषों के करने से। वे बेचारी सर्वथा निर्दोष हैं।

अपराध पुरुषों का है। वे ही उन्हें कुएं में पटकते हैं। स्त्रियां इनके सुख की सामग्री हो रही हैं। दूसरों का जीवन नष्ट करते हैं और स्वयं भी पतित हो जाते हैं। लोग देखते जाते हैं कि हमारा पतन हो रहा है, फिर भी आंखें नहीं खोलते। मोह ने उन्हें बेतरह अपने चंगुल में फंसा लिया है। सखाराम! देश को इस पाप से बचाओ!! तुम से हो सकेगा। कोई बात सोच कर मन में किसी प्रकार का संकोच न करो। मैं सच्चे दिल से ये बातें कह रहा हूं।"

सखाराम अवाक् हो रहा था।

दीनानाथ ने कहा—"भाई, वृद्ध-विवाह रोकने का कार्य्य ज़ोरों के साथ करो। इसमें धन की भी आवश्यकता होगी। तुम वैसे ही बहुत कुछ इकट्ठा कर सकते हो। पर इसके अनुष्ठान के लिये पहिले से भी कुछ चाहिए। पिताजी बहुत धन छोड़ गये हैं। सब कब काम आवेगा? गांवों की आमदनी और बैङ्क का सब रुपया निकाल कर मैं इस पवित्र कार्य में लगा दूंगा।"

श्रीराम ने सहसा आकर कहा, "आपका प्रस्ताव बहुत अच्छा है। सखाराम इस काम को अवश्य करें। मैंने आप लोगों की बातें दूसरे कमरे में बैठ कर सुनी हैं। मेरे पास भी बहुत सा रुपया है वह भी व्यर्थ क्यों पड़ा रहे। इस शुभ काम में मैं भी सब लगा दूंगा।"

इतने में अमरनाथ भी आये। उनके आने से बात का रुख़

बदल गया। वे सखाराम की ओर देख कर बोले "कोई एक कान्सटेबिल बाहर खड़ा है। आप को पूछ रहा है।"

सखाराम बाहर आया। कान्सटेबिल ने वन्दगी करके पूछा, "आप ही का नाम सखाराम है न?"

सखाराम—"हां, क्या काम है?"

उसने एक पत्र दिया। सखाराम उसे पढ़ कर भीतर आया दीनानाथ से कहा "भैया, मुझे कोतवाल साहब ने बुलाया है। किसी कारण वश तुरन्त आने के लिए लिखा है।"

सखाराम ने पत्र दीनानाथ को दिखाया। उन्होंने कहा, "मैं भी चलूं?"

सखाराम—उन्होंने केवल मुझे बुलाया है। आप जाकर क्या करेंगे?"

दीनानाथ—"जल्दी लौटना।"

सखाराम—"अच्छा।"

सखाराम कान्सटेबिल के साथ चला। कोतवाली में कोतवाल साहब चार सिपाहियों के साथ खड़े थे। सखाराम के पहुंचते ही उसे गिरफ्तार कर लिया। कहा, "आप राजविद्रोह के अपराध में गिरफ़्तार किये जाते हैं। सखाराम कुछ नहीं बोला। मुख पर दृढ़ता और शान्ति थी।

सखाराम के लौटने में देर होने पर दीनानाथ चिन्तित हो उठे। श्रीराम से बोले—"वह अब तक नहीं आया।"

श्रीराम—"आते होंगे। किसी काम से ही तो बुलाया होगा। थोड़ी बहुत देर तो लगेगी ही।"

दीनानाथ—"मेरा मन तो न जाने कैसा हो रहा है। चलिए कुछ दूर घूम आवें।"

श्रीराम—"चलिए।"

अमरनाथ भी तैयार हो गये। तीनों कोतवाली की तरफ़ चले। सखाराम के पकड़े जाने का समाचार सुनकर भी उन्होंने गम्भीरता से ही काम लिया। वे ज़रा भी विचलित नहीं हुए।

चौंतीसवाँ परिच्छेद।

—o—

तारा का उद्योग।

स दिन के सुधा सागर' में तारा ने सखारामकी गिरफ़ारी का समाचार पढ़ा। कुछ बेचैन सी होकर दौड़ी हुई पिता के पास गयी। बोली "पिता जी, पिता जी, आपने आज का पत्र पढ़ा है?"

हृदयनाथ—"अभी नहीं। क्या बात है?"

तारा—"सखाराम राज-विद्रोह के अपराध में पकड़ लिए गए हैं।"

हृदयनाथ—"कहां? कब?"

तारा—"परसों के दिन कानपुर में। वहां उन्होंने एक व्याख्यान दिया था। इसी में कुछ दोष ढूंढ़ निकाला गया है।"

हृदयनाथ—"उसका कानपुर का व्याख्यान मैंने पढ़ा है। उस में कोई ऐसी बात नहीं है।"

तारा—"सरकार तो समझती है।"

हृदयनाथ—"तुम क्या करना चाहती हो।"

तारा—"जिस तरह हो, उन्हें छुड़ाना होगा। पन्द्रह तारीख़ को पेशी है। कानपुर चलिए। आपने वकालत पास की है।

अभी तक उस परिश्रम से कोई लाभ नहीं उठाया है। अब समय आ गया है। आप अपना क़ानूनी ज्ञान दिखाइए। चाहे जैसे हो, उन्हें जेल से मुक्त करवाइए।"

हृदयनाथ—"हंसने लगे। कहा, "अच्छा, भरसक उद्योग करूंगा।"

तारा—"उद्योग ही नहीं, उसका सफल होना ज़रूरी है।"

हृदयनाथ—"ऐसा ही होगा।"

तारा—"कल ही मैं वहां पहुंच जाना चाहती हूं। जेल में मिल कर उन्हें ढाढ़स दूंगी।

दूसरे दिन तारा पिता के साथ कानपुर पहुंच गयी। ठहरने का प्रबंध हो जाने पर वह उतावली के साथ सखाराम से मिलने के लिए चली। जेलर हृदयनाथ के जान-पहिचान का निकला। दोनों कालेज में साथ पढ़ चुके थे। शीघ्र ही अनुमति मिल गयी।

जिस समय वे सखाराम के कमरे में पहुंचे, दीनानाथ वहां से बाहर निकल रहे थे। सखाराम ने तारा को चाह की दृष्टि से देख कर हृदयनाथ को आदर के साथ माथा झुकाया। फिर दीनानाथ को पुकार कर कहा, "भैय्या! थोड़ा और ठहर जाइए।"

दीनानाथ लौट आये। सखाराम ने उनसे कहा, "उस दिन मैं आपसे जिन की बात कर रहा था, ये वे ही हैं। ये ही मुझ पर उपकार करने वाले हैं।"

दीनानाथ ने हृदयनाथ को अभिवादन किया। फिर तारा को ओर देखने लगे।

सखाराम ने हृदयनाथ से कहा, "ये मेरे बड़े भाई हैं।"

हृदयनाथ दीनानाथ से प्रेम पूर्वक मिले तारा ने उन्हें नम्रता से सिर झुकाया।

तारा सखाराम से बोली, "कहिए, आप प्रसन्न तो हैं न?"

सखाराम—"तुम्हें देखने से भी क्या प्रसन्नता न आवेगी?"

तारा—"जेल में आने से मन विचलित तो नहीं हुआ!"

सखाराम—"ज़रा भी नहीं। तुम्हारे उपदेश मुझे याद हैं। मेरा हृदय अब कष्टों की परवाह नहीं करता। देश के लिए असहनीय यातना हँसते हँसते सह लूंगा।"

तारा—"पिता जी आप को छुड़ाने आये हैं। आप जल्दी ही स्वतन्त्र हो जायंगे।"

सखाराम—"यहां भी मैं अपने को स्वतन्त्र समझता हूं।"

तारा—"आपके जेल से निकलने पर आपकी कीर्त्ति तपाये हुए सोने की तरह और भी विमल हो जायगी।"

एक ओर हृदयनाथ दीनानाथ को शान्ति प्रदान कर रहे थे। कह रहे थे, "आप किसी प्रकार की चिन्ता न करिए। मैं आ गया हूं, तो आप विश्वास रखिए, सखाराम का कुछ बिगड़ने नहीं पावेगा। आपकी अपेक्षा मैं उसे अधिक ही प्यार करता हूं।"

दीनानाथ ने उनके प्रति अपनी कृतज्ञता जनायी।

बहुत देर तक बातें होती रहीं। लौटते समय दीनानाथ, हृदयनाथ और तारा को भी अपने साथ ही लेते गये। अमरनाथ और रुपिया से उनका परिचय करा दिया। जल्दी ही सब हिलमिल गये। रुपिया ने तारा से गले लग कर अपने यहाँ आकर ठहरने को बात कही। उधर दीनानाथ ने भी हृदयनाथ से यही अनुरोध किया। विवश होकर हृदयनाथ को अपना डेरा उन्हीं के यहाँ उठा लाना पड़ा।

हृदयनाथ ने सखाराम के मुक़दमें की पैरवी करना आरम्भ कर दिया। उसके पक्ष में बड़े बड़े सबल प्रमाण दिये। उसे निर्दोष सिद्ध करने के लिए अनेकों अकाट्य युक्तियां सामने रक्खीं। अपनी अगाध विद्वत्ता से अधिकारियों को चकित कर दिया। अन्त में सखाराम को साफ़ छुड़ा लिया। उनके इस कार्य्य में कानपुर की जनता ने भी उन्हें बड़ी सहायता पहुंचायी थी।

पैंतीसवाँ परिच्छेद।

समाज-सेवा।

कारागार से मुक्त होने पर सखाराम ने पुनः देश-सेवा का कार्य्य आरम्भ कर दिया। अब की बार वह लोगों को देश पर उनका अधिकार बतलाते हुए सामाजिक कुरीतियों को हटाने के प्रयत्न में प्राणपण से संलग्न हो गया। अपने भाई की मार्मिक बातें उसे भूली नहीं थीं। उसने कुत्सित वृद्धि-विवाह के अवश्यम्भावी भयङ्कर परिणाम देश-वासियों के समक्ष रखे। पूर्व समय की विवेचना करते हुए कहा कि स्त्रियां ही वास्तव में किसी समाज अथवा देश के उद्धार की मूल हैं। उन्हें तुच्छ न समझना चाहिये और न उनका किसी प्रकार से तिरस्कार करना चाहिये। वे उन्नति की स्तम्भ हैं। नींव दृढ़ न रहने से कोई क़िला नहीं ठहर सकता। स्त्रियों का पतन होने से कोई समाज अथवा देश नहीं टिक सकता। पहिले जब स्त्रियां देवियाँ मानी जाती थीं, उनका आदर किया जाता था, देश उन्नति के शिखर पर चढ़ा हुआ था। जैसे जैसे उन पर अत्याचार होने लगे, देश दुर्भाग्य की मोटी ज़ंजीरें से जकड़ा जाने लगा। कहां हमारे पूर्वज दूसरों को

शिक्षा दिया करते थे। और कहाँ हम अब दूसरों से सभ्यता का पाठ सीखने में अपना गौरव समझते हैं। आकाश-पाताल का अन्तर होगया है। आज हमारा प्यारा देश अधोगत की चरम सीमा तक पहुंच गया है। यदि अब भी हम अपना आस्तित्व बनाये रहने के उद्देश्य से उचित पथ पर चलने लगें, तो अच्छा है। परमात्मा अन्याय नहीं देख सकता। अन्यायी अवश्य पीड़ित होता है। हमें चाहिये कि स्त्रियों पर किसी तरह का अत्याचार न करें। उन्हें अपने बराबर समझें। उनका मान करें। अपने दुःख-सुख के सदृश उनका भी दुःख-सुख समझें। अभी क्या हो रहा? अपने पालतू जानवरों की अपेक्षा भी हम उन्हें हीन समझते हैं। घर में उनके जन्म लेने पर रोना मच जाता है, जैसे कोई मर गया हो। ध्यान देने से जान पड़ेगा कि यहां अविचार के मात्रा की इति हो जाती है। जब तक स्त्रियों का मूल्य नहीं बढ़ाया जायगा, तब तक कुछ भलाई होनी असम्भव है।

फिर सखाराम ने कहा कि कन्याओं के विवाह में अड़चन का मुख्य कारण यही है कि उनकी अवहेलना की जाती है। विवाह नहीं होता, सौदा किया जाता है। वर और कन्याएं तौली जाती हैं। एक पलड़े पर वर विराजमान होता है, दूसरे पर कन्या रखी जाती है। लोगों की जांच में वर का पलड़ा ठहरता है। कमी पूरी करने के लिये कन्या के पलड़े पर रुपये रखे जाते हैं। इसे कहते हैं दहेज। कन्या का पिता यह दहेज देने

को बाध्य किया जाता है। यदि वह ग़रीब होता है और दहेज नहीं दे सकता, तो उसकी कन्या का विवाह भी नहीं हो सकता। कन्या चाहे जैसी स्वरूपवती और सुशीला हो। वह एक कुरूप और निरक्षर वर की बराबरी कदापि नहीं कर सकती। पिता विवश होकर उसे उठा लेता है और कोई वृद्ध मनुष्य लाठी के सहारे आकर समझाता है, कि क्यों दुविधा में पड़े हो? कन्या के भार से मैं तुम्हें सहज ही मुक्त कर सकता हूं। अपनी गांठ से तुम्हें एक कौड़ी नहीं लगानी पड़ेगी ऊपर से कई हज़ार रुपये मिलेंगे। वेचारा क्या करे? उसकी यह बात मान लेनी पड़ती है। बूढ़ा कितने दिन जीवित रहेगा? शीघ्र ही बालिका का सौभाग्य नष्ट हो जाता है। वे वेचारी इतनी लज्जाशीला होती हैं कि अपने सिर पर विपत्ति का पहाड़ गिरते हुए देखते रहने पर भी मुख से एक अक्षर नहीं निकालतीं। विधवा हो जाने पर उनका रहा सहा अधःपतन होना भी आरम्भ हो जाता है। अनेकों धूर्त्त, बदमाश और लम्पटों के बहकाने में आकर अपनी लज्जा त्याग देती हैं। अपना मुख काला कर लेती हैं और कुल को ले डूबती हैं। कई खुल्लमखुल्ला व्यभिचार करने लगती हैं। सब देखते हैं, यह हमारी बहिन है, यह हमारी बेटी है। किन्तु आंखें नहीं खुलतीं। समाज के सामने भीषण दृश्य आते हैं। वह कान में तेल डाले पड़ी रहती है। सब कुछ होता है। पर उसके आगे कुछ नहीं। देश का इससे अधिक दुर्भाग्य और क्या हो सकता है? जहां धर्म्म नहीं, वहां विजय कहां?

वृद्ध-विवाह ने अपना प्रभाव एक तेजस्वी चक्रवर्ती महाराजा के समान दृढ़ता से जमा लिया है। एक पिता देखता है कि मेरी पुत्री अधन्य वृद्ध-विवाह के कारण विधवा हो कर अपार कष्ट भोग रही है, फिर भी वह मंडप में जाने से नहीं हिचकता। एक श्वसुर अपनी विधवा पुत्र-वधू के सन्मुख निर्लज्ज बनकर सिर पर मौर रख लेता है। मौर नहीं, इसे राज-मुकुट समझता है। छिः! ऐसी अवस्था में बेचारी विधवाएं क्या स्थिर रह सकती हैं? उनका मन कैसा.न होजाता होगा।

सखाराम आवेश में आकर कहता गया—इस घृणित वृद्ध-विवाह ने अनगिनती घर मटिया-मेट कर डाले हैं।" सहस्रों आत्माएं विनष्ट होगयी हैं। इस पाप-पूर्ण-प्रथा को तुरंत ही जड़ से खोदकर देश के बाहर महा समुद्र में डूबो देना चाहिये।

सखाराम को काम में लगाकर तारा कुछ योंहीं नहीं बैठी रही। वह स्त्रियों को उनका कर्त्तव्य, सच्चा और सीधा रास्ता-बताने में लग गयी।

उपसंहार

नानाथ तारा को देखकर बहुत सन्तुष्ट हो रहे थे। उन्होंने उसका विवाह सखाराम के साथ कर देने का विचार किया। अपना विचार हृदयनाथ पर प्रकट किया। तारा से भी यह बात छिपी न रही। उन्हें बड़ा दुःख हुआ, रात में दोनों ने मिल कर सलाह की। सवेरे वे हृदयनाथ के कमरे में गये। दीनानाथ भी अमरनाथ और रुपिया के साथ बैठे थे। सब के सामने घुटने टेक कर बैठे। हाथ जोड़ कर बोले, "बन्धन में बांध कर कर हमें हमारे पवित्र उद्देश्य के पथ से अलग न करिए। प्रसन्न मन से आशीर्वाद दीजिये, जिससे हम यह देश-सेवा का गुरूतर भार सहज ही उठा सकें।"

सबके नेत्र सजल होगये। इस प्रधान स्वार्थ-त्याग के सन्मुख दूसरी बातें कहां टिक सकती हैं? हृदयनाथ ने दोनों को हृदय से लगाकर उनकी मनोवाञ्छा को पूर्त्ति के हेतु शुभेच्छा प्रगट को। दीनानाथ और रुपिया ने भी अच्छे मन से दोनों की विजय-कामना के लिये ईश्वर से प्रार्थना की। अमरनाथ ने उन्हें बारम्बार सराहते हुए उनके इस श्रेष्ठ कार्य्य पर अपनी हार्दिक प्रसन्नता जनायी।

रुपिया तारा की और अमरनाथ सखाराम के प्रधान सहायक बन गये। हृदयनाथ और दीनानाथ समय समय पर उन्हें उपयोगी सलाह देते रहे।

यह पुस्तक एक सच्ची घटना के आधार पर लिखी गई है। देश के युवकों और नवयुवतियों को इससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये और विवाह के इच्छुक बूढ़ों को पश्चात्ताप करना चाहिए।

हमारी पुस्तकमाला

के

ग्राहक बनिए।

हमारा एक मात्र उद्देश ,सामाजिक जीवन में क्रान्ति पैदा करा देना, स्त्रियों के स्वत्वों के लिए अन्याई समाज से झगड़ना, और स्त्रियों के हित की बातें उन्हें बतलाना है। इन्हीं सब बातों को सामने रख कर हमारे यहाँ से बराबर नई नई और उत्तमोत्तम पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं।

कहने का मतलब यह है कि ज़रूरी और जटिल बातों को सरल और रोचक रीति से, पुस्तक के रूप में प्रकाशित करना ही इस कार्यालय का उद्देश है। यही कारण है कि हमारे स्थाई ग्राहक टकटकी लगाए हमारी नई पुस्तकों की राह देखा करते हैं। आप भी इस कार्यालय के स्थाई ग्राहक बन कर उसके लाभ देख लीजिए।

नियमावली।

१—आठ आने 'प्रवेश फ़ीस' देने से प्रत्येक सज्जन स्थाई ग्राहक बन सकते हैं। यह 'प्रवेश फ़ीस' एक साल के बाद, यदि मेम्बर न रहना चाहें, तो वापस भी कर दी जाती है।

२—स्थाई ग्राहकों को हमारे कार्यालय की प्रकाशित कुल

पुस्तकें पौनी क़ीमत में दी जाती हैं।

३—ग्राहक बनने के समय से पहिले प्रकाशित हुये ग्रन्थों का लेना ग्राहकों की इच्छा पर निर्भर है परन्तु आगे निकलने वाले ग्रंथ उन्हें लेने पड़ते हैं।

४—वर्ष भर में, कम से कम पाँच रुपये के मूल्य के (कमीशन काट कर) नवीन ग्रन्थ प्रत्येक स्थायी ग्राहक को लेने होते हैं। पांच रुपये से अधिक मूल्य की पुस्तकें यदि एक वर्ष में निकलें, तो पाँच रुपये की किताबें लेकर शेष ग्रन्थों के लेने से ग्राहक, यदि वे चाहें, तो इनकार कर सकते हैं।

५—किसी उचित कारण के बिना यदि किसी पुस्तक की वी० पी० वापस आती है तो उसका डाक ख़र्च आदि ग्राहक को देना होता है। वी० पी० वापस करने वालों का नाम ग्राहक श्रेणी से अलग कर दिया जाता है।

६—'प्रवेश फ़ीस' के आठ आने पेशगी मनिआर्डर से भेजने चाहियें।

७—स्थायी ग्राहक, पुस्तकों की चाहे जितनी प्रतियाँ, चाहें जितनी बार, पौनी, क़ीमत में मँगा सकते हैं।

८—स्थायी ग्राहकों को अपनी पुस्तकों के अलावा संसार भर की सभी हिन्दी पुस्तकों पर एक आना फ़ी रुपया कमीशन भी हम देते हैं।

व्यवस्थापिका "चाँद" कार्यालय, इलाहाबाद।

शीघ्र ही प्रकाशित होने वाली पुस्तकें:—
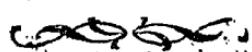
१—प्राणनाथ (उपन्यास)

२—उमासुन्दरी (उपन्यास)

३—शान्ता (उपन्यास)

४—शैलकुमारी (उपन्यास)

५—हिन्दू त्योहारों का इतिहास।

६—पाक चन्द्रिका।

७—फ्लॉरेन्स नाइटिङ्गेल (जीवनी)

स्थाई ग्राहकों को हमारे यहां की प्रकाशित सभी पुस्तकें पौने मूल्य में दी जाती हैं। नियमावली अन्यत्र दी जा रही है शीघ्र ही ग्राहक बन कर लाभ उठाइए। पुस्तकों का बड़ा सूचीपत्र मंगा कर देखिए:—

व्यवस्थापिका,

'चाँद' कार्यालय'

इलाहाबाद।